सम्पादक



जे. एण्ड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

हमारा साहित्य

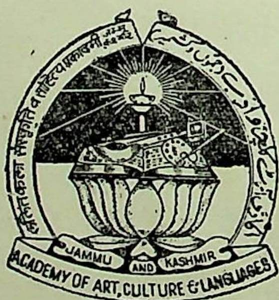
1974

सम्पादक

रमेश मेहता

. एण्ड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू





प्रकाशक : जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, जम्मू / मुद्रक : डोगरा प्रिंटिंग प्रेस, कच्ची छावनी, जम्मू / प्रथम संस्करण : 1976 / मूल्य : रुपये 8.25

HAMARA SAHITYA 1974 : *Edited by* : RAMESH MEHTA

अनुक्रम

आमुख



कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर जम्मू-कश्मीर के हिन्दी लेखकों ने 1974 में न तो किसी प्रकार के विशिष्ट प्रयोग किए और न ही अपनी रचनाधर्मिता को किसी वाद विशेष के साथ सम्बद्ध करने की चेष्टा की। फिर भी, विभिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर यहां के रचनाकार साहित्य को किन्हीं खास सन्दर्भों में रूपायित कर पाने में सफल रहे हैं, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। अपनी सांस्कृतिक चेतना को सजग बनाए रखने के साथ समसाययिक सन्दर्भों को उजागर करने के उनके प्रयास सराहनीय हैं।

हमारा साहित्य के प्रस्तुत अंक के लिए सामग्री का चयन हमने इसकी विविधता को दृष्टि में रख कर किया है। इस प्रकार यह अंक वास्तव में जम्मू-कश्मीर में 1974 में रचित हिन्दी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियों को रेखांकित करने का साधन बना है। हमें विश्वास है कि हमारा यह प्रयास सार्थक सिद्ध होगा।

—रमेश मेहता

वैचारिकी

※

हिंदी-नाटकों के नारी पात्रों का हास्य

—डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

मनुष्य एक हंसने वाला प्राणी है, साथ ही वह एक ऐसा प्राणी है जो स्वयं हास्य का विषय है। कभी ऐसा नहीं होता कि किसी मनुष्येतर विषय को आलंबन बना कर हम हास्य के पटाखे छोड़ने लगें। किसी पशु-पक्षी का कोई व्यवहार हमें हंसा देता है तो वस्तुतः हम उस कार्यव्यापार अथवा क्रिया-प्रतिक्रिया में मानवीय कार्यव्यपार आदि का आरोपन किये होते हैं। खुल कर हंसना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है किन्तु ज्यों-ज्यों सभ्यता के बन्धन दृढ़ होते जाते हैं, हंसना भी काफी सीमा तक प्रतिबन्धित होता जाता है। ससुराल में बहू का ऊंचा बोलना या हसना शालीन नहीं समझा जाता। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक "एक दिन" में शीला उसे "देखने" आए युवक पर हंस देती है—यद्यपि उस की अनुपस्थति में तथापि उसका भाई बुरा मान जाता है। इसलिए पिता राजनाथ कहते हैं—'तीस करोड़ के इस देश में आज तीस भी हंसने वाले नहीं हैं।' जनसंख्या चाहे जितनी बढ़ जाए, हंसने-हंसाने वालों की वृद्धि नहीं हो सकती क्योंकि जैसा कि उपर्युक्त नाटक में शीला ने कहा है—'निर्बल चरित्र को हंसी नहीं आती।' टूटे, जर्जर व्यक्तित्वों की संदूकचियां ढोते हुए हम, हंसना भूलते जा रहे हैं। जिस तथ्य पर हंसा जा सकता है, वही कहीं न कहीं हमारे अपने चरित्र की कमज़ोरी बन कर हृदय में अवसाद भर देता है। ऐसी परिस्थिति में, यह देख कर आश्चर्य नहीं होता कि हिन्दी साहित्य में हंसने हंसाने वाले पात्र बहुत कम हैं। जिन नाटकों के आवरणों पर "हास्य रस का नाटक" लिखा रहता है, प्रायः उन में भी इस के साथ काफी अन्याय हुआ रहता है। जहां तक नारी

पात्रों के हास्य का सम्बन्ध है, हम जानते हैं कि नाटककार अक्सर पुरुष है इसलिए हास्य का केन्द्र नारी रहे, यह स्वाभाविक है । दूसरे, अपनी सारी कुंठाओं के बावजूद नारी आज भी सरल "निश्छल" हंसी हंस सकती है। हिन्दी नाटकों में नारी मनोविज्ञान, कार्यव्यापार आदि के विविध क्षेत्रों से हास्य जनक स्थितियां उभार कर नाटककार मच पर प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है।

आभूषणों के प्रति नारी का लगाव बहुत प्रसिद्ध है, हमारा जाना-पहचाना है। इसके फलस्वरूप कभी दुखद तो कभी सुखद परिस्थितियां हमें देखने-भोगने को मिलती हैं। डा० राम कुमार वर्मा के नाटक 'जूही के फूल' में श्याम मोहन की पत्नी चण्द्रमोहिनी एक अन्य महिला रूपमती के झुमके देख कर वैसे ही झुमके खरीदना चाहती है। रूपमती के अनुसार ये झुमके कलकत्ता से मंगवाए गये हैं । वस्तुतः वहीं, गली में बेचने वाली, रोशनारा से खरीदे गये हैं ये झुमके । श्याम मोहन गली में और चन्द्रमोहिनी घर में हुस्नारा से झुमके खरीद लेते हैं। तुर्रा यह है कि श्याम मोहन के पास नकद दाम चुकाने के लिए पैसे नहीं सो उधार की बात हो जाती है। श्याम मोहन ने, बकौल उसके, ये झुमके दो हज़ार में खरीदे हैं। बीवी क्षण भर के लिए खुश, और फिर झुमके अपने झुमकों से मिलाती है। श्याम मोहन रंग तेज करता है—'देखोगी क्या, कानों में पहन लो। एक-एक हीरा बेलजियम के जौहरियों से खरीदा गया है।' इस नाटकीय स्थिति में हुस्नारा लौट आती है—श्याम मोहन से झुमकों के नकद दाम पाने—तो हंसी का कहना चाहिए 'बंबा ही फूट पड़ता है।' इन्दुमती ने भी झुमके हुस्नारा ही से खरीदे थे। हुस्नारा की भाषा ही मिश्री घोल जाती है—"हज़ूर यों तो मैंने बारह रुपये कहे थे, लेकिन उन्होंने दस रुपये दिये और हंस दिया। मैंने समझा कि उन्होंने अपनी हसी की कीमत दो रुपये काट ली।'

एक नारी की दूसरी नारी के प्रति ईर्ष्या, और यदि इस ईर्ष्या का कारण पति का बटता प्यार हो तो, काफी दिलचस्प नाटकीय स्थितियां पैदा कर देती है । पति के हज़ार स्पष्टीकरण, लल्ल-चप्पो, मिन्नतें—सभी बेअसर ! डा० राम कुमार वर्मा का नाटक 'महाभारत में रामायण' भी ऐसी ही स्थिति को केन्द्र में रख कर बुना गया हंसाऊ तानाबाना है। जयदेव और सुलोचना के सम्बन्धों पर आशंकित हो उठती है—जयदेव की पत्नी रंजना ! जयदेव

कवि है और कवि लोगों को ऐसी स्थितियां भोगने का शायद ज़्यादा 'चान्स' रहता है। नाटक में जयदेव और रंजना के साथ-साथ हास्य को तेज करता है, अपनी बंगला-लहजा युक्त हिन्दी से जयदेव का मित्र घोष! कुछ संवाद देखिए—

रजना —और काफी के प्याले में अपनी मुस्कराहट घोल कर अपने हाथ से तुम्हें प्याला दे दिया—एक ही दिन में।

जयदेव —तो क्या हुआ! यह तो मामूली 'एटीकेट' है।

रंजना —प्याला देते समय उंगलियों से उंगलियां छू लेना भी 'एटीकेट्' है?

जयदेव —तुम स्त्रियों के सोचने की बस एक ही दिशा है अब इस का मेरे पास कोई इलाज नहीं।

रजना —इलाज मेरे पास है। मैं उस काफी वाली की आंखें ही निकाल लूंगी——फिर देखूंगी कि वह घोष का बच्चा और तुम कैसे उसे 'सुलोचना' कहते हो।

ऐसी परिस्थिति में जयदेव 'रोमन हालिडे' सिनेमा देखने के सुझाव पर स्वाभाविक रिमार्क कसता है—'रोमन हालिडे का पिक्चर—और यह एक दूसरा पिक्चर—हमारा हालिडे ऐसा है कि जिसमें—रोमरोम जल जाए!'

नाटक पर चर्चा अधूरी रह जाएगी अगर घोष बाबू को पर्दे के पीछे रहने दिया जाए। दो ही संवाद प्रस्तुत हैं—'थोड़ी लिखी को बहुती जानना' के अनुपात से ज्यादा के लिए सारा नाटक पढ़ना बुरा काम नहीं है।

जयदेव —मेरी पत्नी गुस्सैल जरूर है लेकिन इतनी 'आउट आफ एटीकेट' नहीं हो सकती

घोष —बाबा, पेटीकोट के शामने एटीकेट कोइशे चलेगा......।

कभी कभी नारी सुलभ गालियां भी हंसी का विषय बन जाया करती हैं। अश्क के एकांकी 'नानक इस संसार में' श्रीमती बिंदासरन से वाक्युद्ध में परास्त हो कर दीन दयाल की स्थिति दर्शनीय भी है, दयनीय भी—

दीन दयाल—(तिलमिलाकर) अरे बाबू बिंदा सरन कहां हो? सम्भालो अपनी इस बर्र को जो बिना छेड़े काटती है।

श्रीमती सरन—बर्रे होगी तेरी मां, तेरी बहन, तेरी बीवी, तेरी......

सगाई के पहले देखने-दिखाने की रस्म में लड़के वालों की ज्यादती के प्रति हमारा आक्रोश रहता ही है। इस पर अगर लड़की विद्रोही हो उठे तो अत्यंत सात्विक एव सतोषजनक हास्य की अनुभूति होती है। जगदीश चन्द्र माथुर के नाटक 'रीढ़ की हड्डी'-विहीन नायक पर नायिका की चोट काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। लेकिन अश्क के नाटक 'बतसिया' में एडविन और कोनी का प्रसंग विशेष आह्लादक है—

एडविन —तुम मेरी ड्राइवर हो, मैं तुम्हारा इंजन हूं। जैसे चलाओगी, वैसे चलूंगा।

कोनी —(व्यंग्य से सचमुच तुम इंजन लगते हो, इंजन ने तुम्हें बिलकुल अपने सा बना लिया है, काला-कलूटा, मोटा-मुटल्ला।

एडविन प्यार से कोनी का हाथ दबा लेता है तो कोनी झटके से हाथ छुड़ा कर उबल पड़ती है...'परे-परे, कहां ऊपर चढ़े आ रहे हो।' यही नहीं जब 'होने वाला पति' उसे चूमने की कोशिश करता है तो डायलाग' और 'एक्शन' दोनों मानो 'जग हंसाऊ आग' बिखेरने लगते हैं—

कोनी —गुलाम की यह मजाल! चूमना चाहते हो तो वह पड़ा है मेरा जूता, चाहे जितना चूमो। (एक पैर का जूता परे फेंकती है,

एडविन —मैं इसे वर्षों तक चूम सकता हूं।

कोनी —तो इसे साथ ही घर ले जाओ हालांकि मेरे पास दूसरा जूता नहीं ... ...।

एडविन —......कोनी डार्लिंग।

कोनी —(दूसरा जूता उतार कर हाथ में उठाते हुए) परे रहो, नहीं यह दूसरा जूता खुद तुम्हारा मुंह चूमने बढ़ आएगा।

'नयी रौ नी' वाली महिलाओं को हर पुरानी और बूढ़ी चीज़ से चिढ़ हो जाती है। पुरानी सास, पुराना घर, पुराना फर्नीचर, पुराना नौकर—सब उसके नये चिन्तन की परिधि में 'मिसफिट' हो जाते हैं। कुछ नाटकों की नयी तितलियां भाषा का परिमार्जन और परिसंस्कार आवश्यक समझती हैं। कुछ तो हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी को वरीयता देती हैं। वरीयता क्या देती हैं, हिन्दी में बातचीत उनके लिए मान-हानि

की वेदना उपजाती है। लेकिन अंग्रेजी का अज्ञान, दूसरे को बनाने की कोशिश में खुद बन जाना और सारे परिवेश में बेतुका लगना उन्हें हंसी का विषय बना देता है। उदयशंकर भट्ट के नाटक 'पार्वती' में गुलाब एक ऐसी ही नायिका है। वह महरी को बार-बार समझाती है कि वह उसे बीबी नहीं 'मेम साहब' कह कर पुकारे, 'तुम' की जगह 'आप' कहे और हमेशा 'जी' कहा करे। इस पर चुटीले संवादों का जायका देखिए—

गुलाब —मैं पूछती हूं- तुझे याद क्यों नहीं रहता ?

महरी —हम गंवार औरत जात जी।

गुलाब —मैं कहती हूं 'जी', इस जगह नहीं लगता। जब हम 'आर्डर' दें तब 'जी' कहा कर।

महरी —हम 'आडर' नहीं समझत।

गुलाब —'आर्डर'।

महरी —अच्छा तो का करें जब 'तुम' 'आडा' देऊ ?

नये और पुराने के विरोध और समन्वय-दोनों से जुड़ी स्थितियां सुखद कामदी को जन्म देती हैं। शैलेश मटियानी के एकांकी 'मौत का सामान' में पंडिताइन सत्यनारायण की कथा में 'बैंड' बजवाना चाहती है। कारण ?

पंडितानी —अब केवल सत्य नारायण की पूजा में कौन आए ?...... और अब जो बैंड बज रहा है तो अपने कन्या पाठशाला की सभी मास्टरनियां भी श्रद्धा से सुन रही हैं।

पंडित जी—कथा या बैंड ?

पंडितानी —बस आप तो बैंड के नाम से यूं चौंकते हैं जैसे मजदूरों के 'लाल बावरे' से मिल मालिक।

जीवन की व्यस्तताओं में वृद्धि के साथ-साथ आज नारी-जीवन पर अनेक तनाव हैं। बढ़ती हुई जिम्मेदारी, घर और बाहर के बीच बटा उस का व्यक्तित्व, सुधि सम्भालते ही पारिवारिक समस्याएं जो अर्थ, दहेज और विवाह से जुड़ जाती हैं, हास्य को प्रतिबंधित करने लगती हैं। फिर भी आर्थिक स्वतंत्रता और मुक्ति के मानसिक बोध के कारण परिस्थिति पर हंसना जीवन का स्वाभाविक अंग है और हिन्दी नाटक में इसका अधिक सजगता से समावेश होना चाहिए।



संस्कृत मुक्तककाव्य को कश्मीर का योगदान

—डॉ० वेद कुमारी

संस्कृत कविता तथा काव्यशास्त्र की विभिन्न विधाओं के प्रणयन में कश्मीर के कवियों तथा काव्य-शास्त्रियों का महान् योगदान रहा है। सहज प्रतिभा के धनी इन महाकवियों ने महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीत-काव्य, मुक्तक-काव्य, ऐतिहासिक काव्य, धार्मिक काव्य, व्यंग्यकाव्य, नीतिकाव्यादि सभी प्रकार के काव्यों की रचना की है। साहित्यशास्त्र के रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, एवं औचित्य जैसे विभिन्न सम्प्रदाय कश्मीर की धरती पर प्रचलित हुए और पनपे हैं। भामह, वामन, उद्भट, रुद्र, आनन्दवर्धन, महिभट्ट, अभिनव-गुप्त, मम्मट, क्षेमेन्द्र जैसे आचार्यों की कृतियों के बिना प्राचीन भारतीय काव्य-शास्त्र की सत्ता ही क्या रहती है? कल्हण, बिल्हण को छोड़ दें तो ऐतिहासिक काव्य साहित्य की क्या शोभा बनती है?

प्रस्तुत निबन्ध में कश्मीर के संस्कृत के एक महत्वपूर्ण मुक्तककाव्य की चर्चा की गई है जो प्रायः संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों से उपेक्षित है।

काव्य के भेदों का उल्लेख करते हुए अग्निपुराण के रचयिता ने मुक्तक को चमत्कार प्रधान स्वतन्त्र पद्य माना है।

"मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम्।"

अग्निपुराण; पृ० 336-37

किन्तु यह चमत्कृति किन-किन बातों पर निर्भर करती है, इस की चर्चा पुराणकार ने नहीं की। केवल 'श्लोक एव एकः' कह कर उसने मुक्तक को

अनन्यापेक्षी स्वीकार किया है जिसे कथावस्तु, रस, गुण, चमत्कार आदि के लिये अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है। दण्डी ने मुक्तक को सर्ग-बन्ध काव्य का ही अंग माना है।

मुक्तकं कुलकं कोषसंघातः इति तादृशः।
सर्गबन्धाङ्गरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः ॥

काव्यादर्श 1.13

साहित्यदर्पणकार के अनुसार भी मुक्तक छन्दोबद्ध स्वतन्त्र पद्य होता है—

"छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्"

साहित्यदर्पण 6 परिच्छेद, पद्य 314

केशवकृत शब्दकल्पद्रुम में मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार मिलती है—

'विनाकृतं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम्।
भिन्नं स्यादथ निर्व्यूहं मुक्तं यो वातिशोभनः॥"

यहां मुक्तक के लिये सात विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इस में जहां विनाकृत, विरहित, व्यवच्छिन्न तथा भिन्न ये चार शब्द मुक्तक की स्वतन्त्रता प्रकट करते हैं वहां निर्व्यूह विशेषित और अतिशोभन अपने आप में उसकी परिपूर्णता के द्योतक हैं। प्रबन्ध काव्य के रसास्वादन में कथावस्तु की गति तथा पात्रों के चरित्र का विकास भी सहायक होता है। पात्रों के विषय में बने संस्कार उन पात्रों की उक्तियों को बोधगम्य बनाते हैं तथा रसानुभूति के सम्पादन में सहायता देते हैं। कथावस्तु की कौतुकपूर्ण रमणीयता भी पाठक के हृदय को आकर्षित करती है और आगे के घटनाक्रम को जानने की उत्सुकता उसे शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। इस उत्सुकता के कारण प्रबन्ध काव्य के अनेक नीरस पद्यों की ओर पाठक का ध्यान नहीं जाता, वहां काव्य के गुणदोषों की अनुभूति सामूहिक रूप से होती है। दस बीस सरस पद्यों के बीच दो चार नीरस पद्य भी खप जाते हैं परन्तु मुक्तक काव्य में पाठक को प्रत्येक पद्य के गुण दोष स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं क्योंकि आनन्दानुभूति के लिये कुछ समय तक उसका हृदय केवल एक पद्य विशेष पर टिका रहता है। वहां न तो पात्रों के विषय में पाठक के बने हुए पूर्व संस्कार ज्यादा काम करते हैं और न ही पूर्व घटनाक्रम से समुत्पादित भावी घटनाओं की ओर उसकी उन्मुखता होती है। इसीलिए मुक्तक काव्य के प्रत्येक पद्य का चमत्कार क्षम या अतिशोभन होना आवश्यक माना गया है। समय-समय के अनुसार इस चमत्कृति तथा रमणीयता की परिभाषा चाहे बदलती

रही हो परन्तु मुक्तक में समयानुसार उस रमणीयता के प्रतिपादक सभी उपकरणों की उपस्थिति अपेक्षित समझी जाती रही है। जब कोई मुक्तक ब्रह्मानन्द सहोदर रस द्वारा पाठक के हृदय को आनन्दमग्न करके उसे अन्यविषयों से विरत करा देता है तभी वह सफल मुक्तक कहा जा सकता है। आनन्दवर्धन ने अमरूक के मुक्तक पद्यों की प्रशंसा करते हुए एक-एक मुक्तक को प्रबन्धकाव्य के समकक्ष रख दिया है—

"मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।
यथा अमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव।"

मुक्तक काव्यों के विषय के अनुसार अन्य भेद यथा श्रृंगार मुक्तक, नीतिमुक्तक, भक्तिमुक्तक आदि भी किए जा सकने हैं। इन मुक्तकों में अन्यापदेश या अन्योक्ति शैली का प्रमुख स्थान है और कई मुक्तक काव्य इसी शैली में रचित मिलते हैं। इस शैली में लिखा गया सर्वप्रथम शतक कश्मीर के कवि का भल्लट शतक है। इसके कुछ एक पद्य ही अन्योक्ति शैली से बाहर हैं। शम्भु की अन्योक्ति मुक्तालता भी इसी श्रेणी में आती है। इन दोनों काव्यों में श्रृंगार, भक्ति, नीति का अंकन है, परन्तु प्रमुख विषय नीति है। आनन्दवर्धन का देवीशतक, अवतार का ईश्वरशतक, लोष्ट का दीनाक्रन्दन स्तोत्र, कल्हण का अर्धनारीश्वरस्तोत्र, रत्नाकर की वक्रोक्ति पचाशिका भक्तिपरक मुक्तक काव्य हैं।

क्षेमेन्द्र के चतुर्वर्गसंग्रह, चारुचर्या और दर्पदलन उपदेशात्मक हैं। सिल्हण का शान्तिशतक वैराग्यपरक है। दर्पदलन में कुछ कथानक भी हैं परन्तु वे गौण रूप से मुक्तकों की पुष्टि करने के लिये उपस्थित हुए हैं। क्षेमेन्द्र कृत मुक्तावली भी मुक्तककाव्य प्रतीत होता है। कोष ग्रन्थों में कश्मीर के जल्हण की सूक्ति मुक्तावली वल्लभदेव की सुभाषितावली (450-500 ए० डी०) तथा श्रीवर की सुभाषितावली प्रसिद्ध हैं। इन संग्रहों में बहुत से संस्कृत कवि कश्मीर के हैं परन्तु दुर्भाग्य से उनकी समस्त रचनाएं उपलब्ध नहीं होतीं। सुभाषितसंग्रहों में बिखरे पद्यों से उनके विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

आनन्दवर्धन ने सब से पहले मुक्तक काव्य भल्लटशतक से कई उदाहरण लिये हैं। कल्हण ने राजतरंगिणी में कश्मीर के राजा शंकरवर्मा के समय का वर्णन करते हुए भल्लट का उल्लेख किया है कि गुणियों के संसर्ग से विमुख

रहने वाले उस राजा के राज्य में भल्लट जैसे कवियों को बड़ा कष्टमय जीवन बिताना पड़ रहा था।

एक ओर बड़े-बड़े कवि वेतनरहित जीवन का भार ढो रहे थे। दूसरी ओर बोझा उठाने वाला जड़बुद्धि लवट दो हजार दीनार वेतन के रूप में पा रहा था। (राजतरंगिणी 204-5)

शंकरवर्मा का राज्यकाल 883 ई० से 902 ई० तक था। सम्भवतः भल्लट ने उसके पिता अवन्तिवर्मा का वह राज्यकाल भी देखा था जिस में मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर जैसे महाकवियों को सम्मान प्राप्त हुआ था रत्नाकर शिवस्वामी आनन्दवर्धन जैसे प्रौढ़ महाकवियों के मुकाबले में भल्लट तब तक विशेष समृद्धि नहीं पा सके होंगे तभी कल्हण ने इन नामों के साथ भल्लट को नहीं रखा। परन्तु आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में भल्लट के दो पद्यों को कवि का नाम दिए बिना उद्धृत किया है जिस से प्रतीत होता है कि भल्लट आनन्दवर्धन के समकालीन युवा कवि थे जिन की रचनाओं से जनता को परिचित जान आनन्दवर्धन ने नाम देने की भी आवश्यकता नहीं समझी।

मान्धाता जैसे उदारहृदय अवन्तिवर्मा के राज्यकाल की सुखसुविधाओं से परिचित भल्लट ने जब शंकरवर्मा के राज्य में विद्वानों की उपेक्षा और जनता का शोषण देखा तो उस का पीड़ित कवि हृदय अन्धकार विषयक अन्योक्ति के माध्यम से बोल उठा—

पातः पूष्णो भवति महते नोपतापाय यस्मात्
कालेनास्तं के इह न ययुर्यान्ति यास्यन्ति चान्ये।
एतावत्तु व्यथयतितरां लोकबाह्यैस्तमोभिः
तस्मिन्नेव प्रकृतिमहति व्योम्नि लब्धोऽवकाशः॥

(भल्लटशतक 10)

सूर्य का अस्त हो जाना महान् कष्ट की बात नहीं क्योंकि काल आने पर कौन इस दुनियां से नहीं चल बसे? दूसरे भी जा रहे हैं और जाते रहेंगे, पर सब से अधिक दुःख तो इस बात का है कि सूर्य के जाते ही इस लोक से बाहर के अन्धकारों ने विशाल नभ पर अधिकार जमा लिया है। यह अन्योक्ति दो बिम्ब उपस्थित करती है। एक है सूर्य के प्रकाश से प्रदीप्त सुनहले दिवस का जिस की महत्ता और उपादेयता का अनुमान कश्मीर

की बर्फीली घाटियों में रहने वाले ही लगा सकते हैं और दूसरा है चन्द्रमा की चांदनी से विरहित गहरी काली अमावस की रात का। कवि ने अभिधा से कुछ नहीं कहा पर अन्धकार का काला साया हृदय पर गहरी चोट करता हुआ कवि के कवित्व का परिचय दे देता है। अवन्तिवर्मा के निधन के बाद किसी सामान्य स्तर का उदय भी लोगों की विरह व्यथा को दूर नहीं कर सकता था, पर कवि को यह देख कर और भी दुःख होता है कि क्षुद्र हृदय व्यक्ति अन्धकार को नष्ट करने को तैयार हो रहे हैं। कैसी बिडम्बना है ?

गते तस्मिन् भानौ त्रिभुवनसमुन्मेषविरह
व्यथां चन्द्रो नैष्यत्यनुचितमतो नास्त्यसदृशम् ।
इदं चेतस्तापं जनयतितरामत्र यदमी
प्रदीपाः संजातास्तिमिरहतिबद्धोद्धुरशिखाः ॥ 12 ॥

पता नहीं किस चाटुकार ने एक कीड़े को खद्योत नाम दे दिया है जो नाम अर्थ में सूर्य को छोड़ कर चन्द्र तक को भी नहीं छूता।

सूर्यादन्यत्र यच्चन्द्रऽप्यर्थासंस्पर्शि तत्कृतम् ।
खद्योत इति कीटस्य नाम तुष्टेन केनचित् ॥ 13 ॥

भल्लट देख रहा था कि अब लक्ष्मी दुष्टों के पास ही पहुंचती है, सज्जनों के नहीं। यही नहीं विद्वानों की सदुक्तियां भी उसे सहन नहीं होतीं। स्वच्छन्दचारिणी अभिसारिका के माध्यम से कवि ने निजी व्यथा कही है। स्वच्छन्दचारिणी दुष्ट अभिसारिका लक्ष्मी गहरे अन्धकार भरे रास्तों से जाती हुई गुणी जन के भूषणों की आवाज को भी सहन नहीं कर पाती। परिणामस्वरूप गुणियों ने अपने गुणों को छिपा लिया है। शासन के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने की बुद्धि रखने वाले मनीषी नौकरियों के लालच में चुप बैठे हैं कि यदि कहीं हमारे आंतरिक गुणों का पता चल गया तो यह राजसी ठाठ क्षण भर में छिन जाएंगे। ऐसे किसी सुप्तात्मा को सम्बोन्धित करते हुए कवि कमल के प्रतीक का प्रयोग करता है—

"किं दीर्घदीर्घेषु गुणेषु पद्म सितेष्ववच्छादनकारणं ते ।
अस्त्येव तान्यश्यति चेदनार्या त्रस्तेव लक्ष्मीर्न पदं विधत्ते ॥

अरे कमल तुमने अपने श्वेत लम्बे-लम्बे तन्तुओं को क्यों छुपा रखा है ? कोई कारण तो अवश्य है ? हां यदि दुष्टा लक्ष्मी इन्हें देख ले तो डर के मारे यहां कदम न रखे।

भल्लट ऐसे व्यक्तियों को धिक्कारता है जो निरन्तर निरादर सहते हुए भी अयोग्य स्वामी की सेवा किये जा रहे हैं। भ्रमर और हाथी के प्रतीकों के माध्यम से और श्लेषयुक्त विशेषणों का प्रयोग करते हुए वह कहता है—

"सोऽपूर्वी रसनाविपर्ययविधिस्तत्कर्णयोश्चापल
दृष्टिः सा मदविस्मृतस्वपरदिविकं भूयसोक्तेन वा।
पूर्वं निश्चितवानसि भ्रमर हे यद् वारणोऽद्याप्यसा
वन्तः शून्यकरो निषेव्यत इति भ्रातः क एष ग्रहः।।

अत्याचारी शासक के शासन में राष्ट्र की भावी दुर्गति की कल्पना से सिहर उठता हुआ कवि शिकारी के प्रतीक के माध्यम से कहता है—

"मृत्योरास्यमिवाततं धनुरिदं चाशीविषाभाः शराः
शिक्षासापि जितार्जुनप्रभृतिका सर्वत्र निम्नाकृतिः।
अन्तः क्रौय महो शठस्य मधुर हा हारि गेयं मुखे
व्याधस्यास्य यथा भविष्यति तथा अन्वे वनं निर्मृगम्।।

मौत के खुले मुंह सा यह इस का धनुष, तेज जहर सने ये इसके बाण, अर्जुन को मात करने वाला इस का हुनर, सारे अगों की यह चुस्ती, दिल में जुल्म और अधरों पर मीठे-मीठे गीत, बस जंगल का अब क्या बचा रहेगा ? आचार्य क्षेमेन्द्र इस "भविष्यति" के प्रयोग पर लट्टू हैं। औचित्य विचारचर्चा में वह कहते हैं —

"अत्र लुब्धकस्य धनुः सायकशिक्षागति क्रौर्यगीतानि तथा
यथा वनं निर्मृगं भविष्यतीति भविष्यत्कालः हृदयसंवाद औचित्यमादधाति।"

दिल पर कैसी करारी चोट करने वाला प्रयोग है ? क्या होगा इस देश का जिस की बागडोर होंठों पर चाशनियां भरे तराने और दिल में जुल्म की छुरियां लिये शासकों के हाथ जा पड़ी है ? चहकते पक्षियों, उछलते कूदते हरिणों तथा अन्य पशुओं से भरा यह जंगल सूना हो जायेगा।

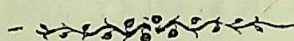
अन्याय की आंधी में धूलि को आसमान पे चढ़ता देख कवि पवन को उलाहना देते हुए कहता है। पवन ! यह तेरी कैसी चाल है जो लोगों के पैरों से कुचले जाने योग्य धूलि को तेजस्वियों के उपभोगयोग्य आकाश में ले जा रहे हो ? इसे उठाते हुए तुम लोगों की आंखों में जो धूल झोंक रहे हो उस की परवाह न सही पर अपनी देह पर जो मैल लगा ली है उसे कैसे हटाना है ?

"कोऽयं भ्रान्तिप्रकारस्तव पवन पदं लोकपादाहतानां
तेजस्विव्रातसेव्ये नभसि नयसि यत्पासुपूरं प्रतिष्ठाम् ।
अस्मिन्नुत्थाप्यमाने जननयनपथोपद्रवस्तावदास्ताम्
केनोपायेन साध्यो वपुषि कलुषतादोष एव त्वयैव ।।

किसी परोपकारी जीव के प्रति समाज के अन्याय का चित्रण पेड़ को कही अन्योक्ति द्वारा किया है। अरे भले वृक्ष तुम चौराहे पर क्यों जन्मे ? इतनी अधिक घनी छाया क्यों बनाई ? फल क्यों लगाए ? फलयुक्त होने पर विनम्र क्यों हुए। अब अपने इन बुरे कर्मों का फल भोगो। लोग तुम्हारी टहनियों को खींचें, मरोड़ें और तोड़ें। यह सब कष्ट सहते रहो।

विप्रलम्भ्रृंगार में पगे एक पद्य में विरहिणी का उलाहना बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। वर्षाकाल ने सुगन्धित वायु और गरजते मेघों के साथ आ कर उसके हृदय की पीड़ा जगा दी है। मोरों ने नाचना प्रारम्भ कर दिया है, बिजली चमक-चमक कर उसका दिल दहला रही है। वियोगिनी नायिका को वायु, मयूर और मेघ से कोई शिकायत नहीं क्योंकि वे सब कठोर हृदय पुरुष हैं। नारी की व्यथा नहीं पहचानते पर शिकायत तो है जो विद्युत उसकी भान्ति नारी होती हुई भी निर्दयता का व्यवहार कर रही है। उसे तो कोमलहृदय नारी होने के नाते पति-वियुक्ता के प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिए थी। कितना चुभता हुआ उलाहना है—

वाता वान्तु कदम्बरेणु बहला नृत्यन्तु सर्पाद्विषः
सोत्साहा नवतोयदानमुखे मुंचलु नादं घनाः ।
मग्नां कान्तावियोगदुःखदहने मां वीक्ष्य दीनाननां
विद्युत्स्फुरसि त्वमप्यकरणे । स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ।



श्री अरविन्द और मानव एकता का आदर्श

—डॉ० देवराज बाली

आधुनिक भारतीय चिन्तन के इतिहास में महायोगी श्री अरविन्द का विशेष स्थान है। अपने सनातन चरित्र और दृष्टिकोण के कारण उन्होंने विश्व-चिन्तन में भी एक अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। श्री अरविन्द की हम महात्मा गान्धी और टैगोर के साथ तुलना नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि गान्धी और टैगोर ने व्यापक रूप से अपने युग को प्रभावित किया तथा जनसाधारण में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफलता प्राप्त की। श्री अरविन्द जनसाधारण को उतना प्रभावित नहीं कर सके फिर भी अपने विचारों के द्वारा मानव जाति के भविष्य के प्रति जो कल्पना इन्होंने की वह बहुत उत्साहवर्द्धक है। जीवन की विभिन्न समस्याओं के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण रखते हुए उन्होंने इन समस्याओं के हल के लिए जो व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किये उस से आज के व्याकुल मानव को बहुत सहारा मिल सकता है।

अपने अध्यायन काल और बाद में कलकत्ता के राष्ट्रीय महाविद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में श्री अरविन्द ने अपने अन्दर इस इच्छा का अनुभव किया कि उनको मानवमात्र की भलाई के लिए कोई सार्थक कार्य करना चाहिये। इसी आंतरिक प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने 1905 में धर्मपत्नी मृनालिणी को लिखा "संसार में सुख की खोज करते हुए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सुख की हर बात के पीछे दुख व्याप्त है। यह बात केवल अपने

बच्चों के प्रति मोह और प्रेम में ही सत्य नहीं अपितु सांसारिक वस्तुओं की हर इच्छा में उचित जान पड़ती है।" इस प्रकार अपनी अद्वितीय और असाधारण अभिलाषा के बारे में श्री अरविन्द बहुत पहले ही सचेत हो गए थे। अपनी राजनैतिक गतिविधियों के कारण, जिनका अन्त अलीपुर में 1908 में 'अलीपुर षडयन्त्र काण्ड' के मुकदमे के साथ हुआ श्री अरविन्द अपनी आंतरिक अभिलाषा को किसी प्रकार दबाये रहे। अपने संक्षिप्त कारावास काल में उन्होंने अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार किया। इस प्रकार उन्होंने राजनीति के क्षेत्र को छोड़ कर अपनी व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति तथा मानव जाति की उन्नति के लिए शेष जीवन भर कार्य करने का निर्णय लिया।

जीवन भर श्री अरविन्द ने मानव स्वतन्त्रता मानव जाति की एकता और मानव के देवत्व के बारे में चिन्तन किया। अपने चिन्तन के काल में श्री अरविन्द ने महसूस किया कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए मनुष्य का भविष्य सब से गम्भीर समस्या है। मानव की सब कठिनाइयों, समस्याओं और त्रुटियों का कारण उसकी अज्ञानता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में दो प्रकार के ज्ञान की बात कही गई है। प्रथम ज्ञान विद्या है जिस के द्वारा हमें अपनी आत्मा का बोध होता है और हम समझते हैं कि आत्मा और परमात्मा में भी कोई भेद नहीं। विद्या के विपरीत अविद्या है जो वास्तव में अज्ञान है जिस में बौद्धिक ज्ञान की सब बातें आ जाती हैं। श्री अरविन्द के अनुसार अज्ञान व्यक्तिगत समस्या न हो कर एक सामूहिक समस्या है। सामूहिक अज्ञानता व्यक्तिगत अज्ञानता से बहुत भयानक होती है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में असुरों और राक्षसों की बहुत सी कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। वे सामूहिक अज्ञानता के प्रतिनिधि थे। अज्ञानी मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा कुछ लोगों को हानि पहुंचा सकता है: परन्तु जो देश अज्ञानता में लिथड़ा हुआ है अपने अज्ञान के कारण असाधारण आकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करता है उसी के कारण संसार में युद्ध और उस के भयानक परिणाम देखने को मिलते हैं। सामूहिक अज्ञानता के विपरीत श्री अरविन्द ने सामूहिक जीवन की बात की ताकि मानव की वर्तमान समस्याओं का उचित समाधान ढूंढा जा सके।

परिवार सामूहिक जीवन की सब से प्रारम्भिक इकाई है। इस के बाद समुदाय, कबीले, जातियां और राष्ट्र आये। राष्ट्र इस समय तक सामूहिक

जीवन की सब से बड़ी इकाई है। हर राष्ट्र एक शक्ति का परिचायक है। इस शक्ति का पता राष्ट्रीय चेतना के रूप में देखने को मिलता है। इतिहास साक्षी है कि विश्व के विभिन्न भागों में इसी राष्ट्रीय चेतना के कारण विदेशी शासन के विरुद्ध लोगों ने आवाज़ उठाई और सारे एशिया अफ्रीका में रह रहे करोड़ों नर-नारियों को नया जीवन मिला। आज हमें सामूहिक जीवन के द्वारा इस राष्ट्रीय चेतना का प्रयोग विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिये करना है। यह तभी सम्भव है जब विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयां सामान्य लक्ष्यों के लिये संगठित हो जायें।

दो विश्व युद्धों तथा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के होते हुए भी एकता के बारे में मानव जाति की एक व्यापक रुचि देखने को मिलती है। सामूहिक जीवन की अब एक ही इकाई रह गई है जो हमें प्राप्त करनी है। यह इकाई है मानव जाति। इस लक्ष्य की प्राप्ति मानव की परिपूर्णता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इस सिलसिले में आज तीन बातें देखने को मिल रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति हुई है उस से समय और स्थान का अन्तर हो गया है तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच बाहरी रुकावटें दूर हो गई हैं। दूसरी ओर आर्थिक एकता के प्रति व्यापक मोह देखने को मिल रहा है। आर्थिक समस्यायें सारे संसार के सामूहिक जीवन का केन्द्रबिन्दु बन गई हैं। राष्ट्रों के बीच जितना आर्थिक लेन-देन आज देखने को मिल रहा है इतना इतिहास में पहले कभी देखने को नहीं मिला। आर्थिक एकता के लिये शान्ति की आवश्यकता है और शान्ति से मानव एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। तीसरी बात यह है कि समाजवादी व्यवस्था पर आज बहुत जोर दिया जा रहा है। इस व्यवस्था का व्यावहारिक रूप सामूहिक जीवन में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जाति की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन तीन बाहरी साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

श्री अरविन्द के अनुसार यह आवश्यक है कि मानव जाति की एकता के लिए पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के संयोग से विश्व के लिए एक सामान्य संस्कृति को जन्म दिया जाए। पश्चिम की शुद्ध भौतिक और बौद्धिक संस्कृति के आधार पर आने वाली पीढ़ियों के लिए कोई आशा नजर नहीं आती। भारतीय संस्कृति में मानव जाति की आध्यात्मिक एकता के द्वारा विश्वबन्धुत्व

की बात हमेशा से कही गई । भारत में धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और समाज हमेशा मानव जाति की सेवा के लिए आत्मा के साधन माने गये हैं। श्री अरविंद के विचार में पश्चिम के विज्ञान और पूर्व के अध्यात्मवाद को भविष्य के लिये स्थिर आधार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। उनको पूर्ण आशा थी कि बढ़ते हुए ज्ञान, जीवन की नई आकांक्षाओं तथा समस्याओं के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण से, भविष्य में, निश्चय ही नये और अच्छे जीवन की प्राप्ति होगी । यह कहना गलत है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। विकास की प्रक्रिया एक निश्चित सत्य है और सामूहिक प्रयास से मानव की पूर्णता तथा अच्छे भविष्य को हम आसानी से प्राप्त कर सकेंगे ।

इस स्थान पर श्री अरविंद के विकास क सिद्धान्त की ओर सकेत करना लाभदायक होगा । उनके अनुसार पदार्थ और आत्मा में कोई विरोध नहीं है। विकास की प्रक्रिया में पदार्थ में आत्मा का प्रकट होना निश्चित है। श्री अरविंद के अनुसार भारतीय चिन्तन में व्यक्ति को विकास का आधार मान कर उसके व्यापक पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया गया । इसके विपरीत पश्चिम में भौतिक और बौद्धिक आधार मान कर विकास के आध्यात्मिक पक्ष को कोई महत्व नहीं दिया गया । मानव जाति के भविष्य को लक्षित करके हमें दोनों दृष्टिकोणों की सही बातों को मान लेना चाहिए। विकास की सच्चाई को हम भौतिक और भाववादी सिद्धान्तों के द्वारा नहीं समझ सकते । श्री अरविंद का विकास के प्रति दृष्टिकोण अध्यात्मवादी और मानववादी सिद्धान्तों पर आधारित है। विकास का आध्यात्मिक दर्शन इस विश्वास पर निर्भर करता है कि आत्मा विकास और निर्माण का उद्गम है। श्री अरविंद के अनुसार यह कहना गलत है कि भौतिक जगत माया है। सत्य तो यह है कि इसी जगत में विकास की निरन्तर प्रक्रिया के द्वारा आत्मा परमसत्य के रूप में अपने को प्रकट करती है। अपने अज्ञान के कारण मनुष्य अपने अन्दर वर्तमान दैवीय तत्व को समझ नहीं पाता । श्री अरविंद के आध्यात्मिक विकास का अर्थ यही है कि अज्ञानपूर्ण जीवन को दैवीय जीवन में परिवर्तित किया जाए ताकि आत्मा सत्य के प्रति सचेत हो। आध्यात्मिक रूप से परिवर्तित मनुष्य ही समस्त संसार के जीवन को अपना सकता है। इसी के द्वारा उस में मानव मात्र के लिए सद्भावना प्रेम और श्रद्धा का संचार होता है। सांसारिक जीवन में सुधार लाकर श्री अरविंद इस संसार को जीवन को जीने के योग्य उचित स्थान

बनाना चाहते थे। मनुष्य का शारीरिक और मानसिक रूप में विकास मानवता के सतत् उत्थान के लिये मार्ग प्रशस्त करता है।

विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य की महान उपलब्धियों के कारण मनुष्य का मन बहुत परेशान हो गया है। विज्ञान के कारण भौतिक अर्थों में मानवता का जीवन एक हो गया है। परन्तु मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष को लिया जाए तो आज व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों में विचार संघर्ष पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। श्री अरविंद के अनुसार विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जबकि उसके द्वारा मन और जीवन को विश्व रूप की ओर प्रेरणा मिले। वर्तमान परिस्थितियों पर काबू पाने के लिए हमें अपना सम्बन्ध सत्य और आत्मा के साथ बढ़ाना चाहिये। श्री अरविंद ने कहा कि जब मनुष्य आध्यात्मिक मुक्ति की ओर अग्रसर होता है तो अपने आप ही आध्यात्मिक एकता की ओर भी उसकी प्रगति होनी शुरू हो जाती है। आध्यात्मिक रूप से विकसित मनुष्य स्वतः ही मानव मात्र की भलाई की बात सोचता है। इसीलिए श्री अरविन्द ने सामूहिक जीवन और मानव जाति की एकता के लिए मनुष्य के आध्यात्मिक विकास पर बहुत बल दिया है।

मनुष्य के सांसारिक जीवन में सुधार करके दैवीय जीवन की सम्भावनाओं को बढ़ाना अरविन्द के दर्शन की सब से महत्वपूर्ण विशेषता है। उनके अनुसार समाज का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करे जिन में हर आदमी को अपनी क्षमता के अनुसार विकास करने का समान अवसर मिल सके। यह उनका दृढ़ विश्वास था कि सतत् प्रयत्न के द्वारा हर मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक व्यक्तित्व में परिवर्तन करके आध्यात्मिक और दैवीय व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकता है। आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया में विज्ञान और तर्क बहुत कम सहायक हो सकते हैं। इस में कोई शक नहीं कि विज्ञान ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें दानवीय मनोवृत्ति के लौटने की सम्भावना समाप्त हो गई है। पर इस के साथ एक दूसरे प्रकार की दानवीयता बढ़ी है जिस को हम औद्योगिक, व्यावसायिक और आर्थिक दानवीयता कहते हैं। विज्ञान ने परस्पर विरोधी परिस्थितियों को जन्म दिया है। एक ओर तार्किक मानववाद को बढ़ावा मिला है तो दूसरी ओर लक्ष्यहीन शक्तिवाद तथा शक्ति की बेहूदा कामना

को प्रोत्साहन मिला है। मानव जाति की एकता के लक्ष्य के लिए यह आवश्यक है कि हम विज्ञान का शुद्धिकरण करके उसको मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयोग में लाएं।

श्री अरविन्द के अनुसार व्यक्तिवाद और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बीच आजकल एक संघर्ष चल रहा है। जब तक मानव समस्याओं के प्रति हम एक व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाते मानव जाति का भविष्य अनिश्चित ही रहेगा। नैतिक मूल्यों के बिना केवल आर्थिक राजनैतिक तथा सैनिक हिंसा के बल पर स्थिर एकता असम्भव है। मानव जाति के विकास का क्रम व्यक्तियों, जातियों और मानवमात्र के बीच सम्बन्धों को सतत् पुष्ट करना है। यह तीनों पक्ष दूसरे पक्षों से सम्बन्ध रख कर अपनी उन्नति करना चाहते हैं। मानव जाति के विकास का अर्थ है व्यक्तियों, जातियों और राष्ट्रों का विकास। परन्तु इस प्रक्रिया में हमें आपसी सघर्ष से बचने का प्रयास करना चाहिये।

मानव एकता के आदर्श को प्राप्त करते के लिए हमें एक ऐसे समाज का निर्माण करना होगा जिस में स्वतन्त्रता, समानता और भाई-चारे की भावना को सब से अधिक महत्व मिल सके। सही मानों में अभी तक हम एक भी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके हैं। स्वतन्त्रता की बहुत बात की जा रही है पर मानव को जो कुछ भी स्वतन्त्रता मिली है वह केवल बाहरी है। इसी तरह आधुनिक युग में समानता भी एक आम नारा है। हम जो कुछ भी समानता ला सके हैं वह केवल कागजी है क्योंकि व्यवहार में आज भी मनुष्य-मनुष्य के बीच खाइयां बनी हुई हैं। जब तक हम व्यक्तिगत और सामूहिक अहं को नहीं त्याग देते यह लक्ष्य हम प्राप्त नहीं कर सकते। सही भाई-चारे की भावना आत्मा में निहित है और आत्मा के द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक पक्ष पर बहुत बल दिया है। आध्यात्मिक एकता के ऊपर ही स्वतन्त्रता, समानता और विश्वबंधुत्व के लक्ष्य निर्भर करते हैं।

आध्यात्मिक एकता के लिये यह आवश्यक है कि हम कुछ ऐसे व्यक्तियों को सामने लायें जो अपने निजी हितों का समाज के हित के लिए बलिदान कर सकें। इसके साथ हमें एक ऐसे समाज के निर्माण का प्रयास करना होगा जिस में हर व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार पूर्ण विकास का समान अवसर

मिल सके। इस प्रकार आध्यात्मिक एकता का अर्थ होगा व्यक्ति और समाज के आपसी सम्बन्धों में आध्यात्मिक परिवर्तन के प्रति रुचि का पैदा होना। तभी आर्थिक और यान्त्रिक व्यवस्था के होते हुए भी हम मानव एकता की आशा कर सकते हैं। आदर्श और मानव की पूर्णता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

मानव जाति की एकता के सन्दर्भ में श्री अरविन्द ने स्वतन्त्र सामुदायीकरण की बात की है। एकता जीवन का महान सिद्धांत है जबकि स्वतंत्रता उसकी आधारशिला है। आज जब हम राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों में उलझे हुए हैं, स्वतन्त्र सामुदायीकरण में कठिनाइयां आ सकती हैं। परन्तु हमें इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्री अरविन्द के अनुसार "युद्ध का बहिष्कार और सब व्यक्तियों के समान अधिकारों के सिद्धांत में घनिष्ठ सम्बन्ध है।" अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देनी होगी। हमें एक ऐसी व्यवस्था के लिए प्रयत्न करना होगा जिस में आपसी मेल-मिलाप तथा भाई-चारे की भावना बढ़े और मिल कर समस्याओं को हल किया जा सके। यदि सब लोग मिल कर प्रयास करें तो हमारा भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल बन सकता है।

मानव के सामुदायीकरण, जिसकी बात पहले की जा चुकी है, के विषय में श्री अरविन्द ने कहा है कि मानव जाति के रूप में उसकी अन्तिम इकाई का लक्ष्य हमें अभी प्राप्त करना है। परन्तु इस के लिए भी शक्ति का प्रयोग हमें नहीं करना होगा। स्वतन्त्र राष्ट्रों के एक विश्वसंघ की स्थापना से हमारा लक्ष्य पूरा हो जायेगा। न्याय और समानता के आधार पर यदि विश्व के सब देश एक दूसरे की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता का आदर करने लग जायें तो जिन कठिनाइयों का हम सामना कर रहे हैं वे दूर हो सकती हैं।

शुद्ध मानववादी व्याख्या देते हुए श्री अरविन्द ने कहा कि मानव समस्याओं के समाधान के लिए केवल विश्व संघ का विचार ही काफी नहीं है। उन्होंने उन साधनों की ओर भी संकेत किया जिनकी सहायता से ऐसे राज्य को सुरक्षित रखा जा सके। सबसे पहले हमें अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था करनी होगी जो अपराधों का निरीक्षण करे। इसके साथ ही

अपराधों की रोक-थाम के लिए कारगर साधनों का प्रयोग करना होगा। अन्त में भ्रष्ट मनुष्यों को शिक्षा के द्वारा बदलने की व्यवस्था करनी होगी।

श्री अरविन्द संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी थे। सामान्य मानवीय भावना के आधार पर उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के सामने प्रस्तुत किया। जब तक हम व्यक्तिगत और राष्ट्रीय हितों को अधिक महत्व देते रहेंगे मानव एकता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। भविष्य में हमारी आशायें मानव धर्म के विकास के ऊपर निर्भर करती हैं। मनुष्यमात्र ईश्वर का रूप है, अतः मनुष्य-मात्र की सेवा ही सच्चा धर्म है। सब प्राणियों में एक ही आत्मा व्याप्त है और इस सत्य से विश्वबन्धुत्व की भावना को महान बल मिल सकता है।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि श्री अरविन्द का दृष्टिकोण अद्वितीय और विशाल था। उन्होंने पलायनवादी दर्शन और व्यक्तिगत मोक्ष की बात न करके मानव जाति का हित करने में महान योगदान दिया है। समाज सुधारकों और समाजसुधार की गतिविधियों के बावजूद संसार में गरीबी, बीमारी, अज्ञानता, भ्रष्टाचार, शोषण और अन्य बहुत सी बुराइयां बनी हुई हैं। समस्त बुराइयों को दूर करने के लिए श्री अरविन्द ने मानव प्रकृति में परिवर्तन पर जोर दिया। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है, उसमें पूर्ण विकास की क्षमता है। मनुष्य में पुनः विश्वास पैदा करने के लिए श्री अरविन्द ने जो कुछ किया उसके लिए मानव जाति उनकी हमेशा आभारी रहेगी। पदार्थ, मन और जीवन के परिवर्तन के द्वारा समस्त मानवमात्र के दैवीयकरण की जो बात श्री अरविन्द ने की वह मानव चिन्तन के इतिहास में एकदम नयी कही जा सकती है। उनके द्वारा दिखाया गया मार्ग कठिन अवश्य है परन्तु उसके द्वारा स्थायी शान्ति, सुख और मानव की उन्नति की कल्पना को साकार किया जा सकता है।



अमीर खुसरो : जीवन और दृष्टि

—डॉ० निज़ामुद्दीन

अमीर खुसरो का असली नाम अबुलहसन यमीनुद्दीन था। उनके पूर्वजों में अमीर सैफुद्दीन महमूद तुर्की के लाचीनी कबीले के सरदार थे और एक सम्भ्रांत कुल से सम्बंधित थे। हिन्दुस्तान आने से पूर्व यह वंश बलख के आस-पास रहता था, लेकिन चंगेजी पाशविकता और अत्याचारों के कारण अमीर सैफुद्दीन महमूद भारत आ गया। उस समय यहां शम्सुद्दीन अल्तमिश का शासन था। अमीर साहब ने दिल्ली से कुछ दूर जिला एटा के पटयाली गांव में निवास किया। पटयाली को मोमिनाबाद या मेमिनपुर भी कहा जाता है। अमीर साहब ने बादशाह के यहां नौकरी की और शीघ्र ही अपनी विवेकशीलता एवं वैयक्तिक कुशलता के कारण जागीरदार हो गए। उनका विवाह दिल्ली के एक सिद्ध पुरुष नवाव इमादिलमुल्क की पुत्री से हुआ।

उनके तीन पुत्र हुए—एजाजुद्दीन अलीशाह, अबुलहसन यमीनुद्दीन और अहसामुद्दीन अहमद। इन में यमीनुद्दीन या अमीर खुसरो (1253-1325) अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि थे। कहा जाता है कि जब वह उत्पन्न हुए तो अमीर साहब उन्हें एक महात्मा के पास ले गये, बालक अमीर खुसरो पर दृष्टि डालते ही महात्मा ने कहा, "यह लड़का ईश्वर-भक्त होगा और कयामत तक इसका नाम अमर रहेगा।" खुसरो जब चार वर्ष के ही थे तब दिल्ली आ गये और फिर उनकी शिक्षा-दीक्षा का यहीं प्रबन्ध हुआ।

वह जन्मजात कवि थे। 'तोहफतुस्सफर' की भूमिका में उन्होंने अपने विषय में लिखा है—"मेरे वालिद मुझे मदरसे भेजा करते थे लेकिन मैं रदीफ

और काफिये के चक्कर में ही रहता था । मेरे काबिल उस्ताद सम्रादुद्दीन मुहम्मद, जो आमतौर पर काज़ी के लकब से मशहूर थे, मुझे खुशनवीसी सिखाने की कोशिश करते रहते थे, लेकिन मैं महजबीनों (चन्द्रमुखियों) के खत की तारीफ में अशार कहता रहता था ।" अभी खुसरो नौ ही वर्ष के थे कि पिता को वीरगति प्राप्त हुई । उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार उनके नाना इमादिलमुल्क ने उठाया । उन्हीं दिनों वह तत्कालीन सुविख्यात सिद्धपुरुष हजरत निजामुद्दीन औलिया के सम्पर्क में आए । उन्होंने फारसी, अरबी, हिन्दी का यथेष्ट ज्ञान अर्जित कर लिया था । सम्भवतः वह तुर्की भी जानते थे । डा० वहीद मिर्जा के मतानुसार "उनके फारसी और हिन्दी जबानों में कामिल होने में कोई शुबह नहीं हो सकता, इसलिए कि अगर फारसी उनके आबावो-अजदाद की भाषा थी तो हिन्दी उन्हें अपनी वाल्दा से विरसे में मिली थी । इन दोनों जबानों के अलावा वह और जबानें ज़रूर जानते थे ।"

वह उच्च कोटि के कवि तो थे ही, साथ में इतिहास, तसव्वुफ, साहित्य, ज्योतिष, संगीत आदि में भी उनकी अगाध रुचि थी । संगीत के तो वे आचार्य माने जाते थे । अपनी काव्य-कुशलता, विद्वत्ता, विवेकशीलता के कारण वह प्रत्येक राजा के दरबार में आदरणीय समझे जाते थे । गयासुद्दीन बलबन से लेकर तुगलक तक उन्होंने 50 वर्षों में ग्यारह बादशाहों के ताज को उठते-गिरते देखा था । हजरत निजामुद्दीन औलिया का शिष्यत्व ग्रहण करने पर तो खुसरो की काया ही पलट गई । उन्होंने अपनी सकल सम्पत्ति का दान कर किया । हजरत निजामुद्दीन को भी उनसे कम प्रेम न था । वह बहुधा कहा करते थे कि मैं सब से उकता जाता हूं लेकिन खुसरो से नहीं । इस तुर्क (खुसरो) के दिल में जो आग सुलग रही है कयामत के दिन इस से मेरा नामाए-एमाल (कर्म-लेखा) पवित्र हो जायेगा । वह कहा करते थे कि अगर दो आदमियों को एक ही कब्र में दफ्न किया जा सकता तो मैं चाहता कि खुसरो को मेरे साथ दफ्न किया जाये । उन्हीं के माध्यम से बहुत से लोग तो हजरत से अपने काम निकाल लेते थे । शेख साहब ने अपने अंतिम समय में यह इच्छा प्रकट की थी कि मेरी कब्र के सन्निकट, पार्श्व में ही खुसरो को भी दफ्न किया जाये । लेकिन लोगों ने खुसरो को पार्श्व में दफ्न नहीं किया, (क्योंकि कहीं भविष्य में इन दोनों की कब्रों में लोगों में कुछ भ्रम पैदा न हो) अलबत्ता वह आज भी हजरत के चरणों के सन्निकट

ही दफ्न हैं और दोनों की समाधियों पर प्रत्येक वर्ष पूर्ण अकीदत और निष्ठा के साथ रिवायती शान से "उर्स" का आयोजन इस्लामी कैलेण्डर के अनुसार शिव्वाल की 17 तारीख को किया जाता है। यहां यह बात स्मरणीय है कि जब शेख म ब का उर्स लगता है तो उसका शुभारम्भ खुसरो के निम्न हिन्दी-दोहे से ही होता है—

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुं देस॥

खुसरो आशु कवि थे। शेर कहना, तुरन्त जवाब देना मानो उन्हीं के हिस्से में आया था। चार पनहारियों की अटपटी फरमाइश पूरी करना खुसरो का ही चातुर्य था। खीर, चर्खा, ढोल और कुत्ता इन चार विषय-वस्तुओं को एक साथ, एक दोहे में समाहार करना उनकी कुशाग्र बुद्धि एवं हाजिर जवाबी का सुपरिचायक है—

खीर पकाई जतन से चर्खा दिया जलाय।
आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजाय॥

ला पानी पिला, इतना सुनने पर ही शायद पनहारियों ने खुसरो को पानी पिलाया होगा।

फारसी कविता—यदि शेख सादी को फारसी गजल का और फिरदौसी को मसनवी का सम्राट कहा जाए तो खुसरो गजल और मसनवी दोनों के सम्राट माने जा सकते हैं। वह बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे और सभी काव्य-विधाओं पर उनके विशिष्ट व्यक्तित्व की अभिछाप परिलक्षित होती है। उनकी गजलों में पीड़ा, कसक, संवेदना और आत्मसमर्पण की भावना का अतिरेक है। मसनवियों में प्राकृतिक सुषमा का स्पन्दन है। कसीदे नाजुक आफरीनी के अजस्र स्रोत हैं। मसनवियों में शोकाब्धि उमड़ता दृष्टिगत होता है। गजल और मसनवी के क्षेत्र में वह शेख और निजामी से बाजी मार ले गये। खुसरो ने हिन्दुस्तान की फारसी को ईरान की फारसी से कम नहीं समझा।

'गरतुल कमाल' की भूमिका में तो उन्होंने हिन्दुस्तान की फारसी कविता को इतर देशों की फारसी कविता से श्रेष्ठतर माना है। उनकी फारसी कविता में हिन्दी शब्दों की मधुर चाशनी भरी पड़ी है जिससे कविता का माधुर्य सहजतः सम्वर्धित हो गया है। फारसी में उनके पांच दीवान हैं—

तोफ्फतुस्सफर, वसतुलहयात, गरतुलकमाल, बकियातकिया, निहायतुलकमाल। मसनवियों (आख्यानपरक काव्यों) में कुरानुस्सादैन, खिजर खां व दोल रानी की इश्किया दास्तां, नुहसिपहर, मतलाउन्नूर, शीरीं खुसरो प्रसिद्ध हैं। 'एजाज खुसरवी' में उनके फारसी गद्य का स्वरूप दृष्टव्य है।

खुसरो की गजल की यह विशिष्टता है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि दो व्यक्ति बातें कर रहे हों। उनकी उपमाओं की रमणीयता, सजीवता और चित्रात्मकता सराहनीय है। फारसी कविगण नायिका की मस्तानी चाल की कबक (चकोर) से उपमा देते हैं, हिन्दी में इसके लिए हंस को उपमान चुना गया है। लेकिन कबूतर जिस मस्ती से चलता है वह भी कम मनोहर नहीं लगता। यह एक अछूती और अप्रतिम उपमा है जो खुसरो ने प्रयुक्त की—

जा है खरामश जां नाजगी व अयारो।
कबूतर पे निशात आमदस्त पिंदारी॥

एक स्थान पर नायिका के आगमन को बिल्कुल नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है—क्या तुझे आखिरत (कयामत के बाद) और तकवा (परहेज) का कोई डर नहीं, मुसलमानों के शहर में इस तरह नहीं आया करते। कहने का आशय यह है कि नायिका को देख कर मुसलमानों का ईमान डगमगा सकता है—

बुते आफत तकवा व आखरीं नमीदानी।
के दर शहर मुसलमानो बनायदई चुनीं आमद॥

नायिका को नायक अपने पास से नहीं जाने देता, कहता है कि तेरे जाने के समय मुझे रोना आता है, इतना ठहर जा कि बारिश थम जाये, लेकिन नायिका का जाना ही तो बारिश की निशानी है। कविवर की सूक्ष्म कल्पनाशक्ति पर आश्चर्य होता है।

मौलाना शिबली ने 'शेरुल अजम' (भाग 2) के पृष्ठ 135 पर लिखा है कि "एशियाई शायरी पर यह आम एतराज है कि खास-खास चीज़ों पर नज्में लिखी गई हैं मसलन कलम, कागज़, किश्ती, दरया, शमा, सुराही, जाम, खास मेवों और फलों वगैरह-वगैरह पर। ऐसी मुसलसम और लम्बी नज़्में नहीं मिलतीं जिन से इनकी तस्वीर आंखों के सामने फिर जाये। खुसरो ने एशियाई शायरी की इस कमी को पूरा किया।" यह बात ध्यातव्य है कि

खुसरो प्रथम कवि हैं जिन्होंने फारसी, उर्दू और हिन्दी में कागज, किश्ती, सखी, नमक, लोटा, कुत्ता, कंघी, जूता, पंखा, बुखार (ज्वर) आदि को काव्य-सामग्री बनाया। उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों का भी हृदयस्पर्शी चित्रण किया। सांझ प्रातः, वन-उपवन, पावस, बसंत के मनोरम चित्र उनके फारसी कलाम में भरे पड़े हैं।

उर्दू कविता - खुसरो ने उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं की नींव अपनी मौलिक प्रतिभा से डाली, दोनों भाषाओं को प्राणवंत किया और अन्य कवियों के लिए एक नूतन मार्ग का अन्वेषण कर उनका पथप्रदर्शन किया। खुसरो ने उर्दू में जिन संज्ञाओं क्रियाओं आदि का प्रयोग किया आज भी उसी रूप में लेखक करते आ रहे हैं। जहां फारसी की मध्वाप्यायित कविता के कारण उन्होंने 'तूत-ए-हिन्द' का खिताब प्राप्त किया, वहां उर्दू कविता ने "उर्दू मैखाने का पीरेमुगां" का खिताब अता कराया।

उन्होंने उर्दू में हिन्दी शब्दावली का रसायन घोल कर उसे एक नया रूप प्रदान किया। उर्दू में प्रथम शेर कहने का श्रेय खुसरो को ही प्राप्त है। अतः उर्दू साहित्य में उनका एक ऐतिहासिक महत्व है। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रन्थ 'तारीखे अदब उर्दू' (पृ० 17-18) पर कहा है कि 'इस में कोई शक नहीं कि सबसे पहला शायर जबाने-उर्दू का इस धुंधलके में जो साफ तौर पर नुमायां नजर आता है वह हजरत अमीर खुसरो देहलवी हैं जिन की शोहरत बहैसियत एक फारसी शायर के किसी तारीफ व तौसीफ के मोहताज नहीं, उन्होंने सब से पहले उर्दू अल्फाज अदबी अगराज से इस्तेमाल किये और सब से पहले उर्दू में शेर कहा। सब से पहली गजल उर्दू में अमीर खुसरो ही की तरफ मनसूब है।' उन की ख्याति उर्दू के कवि या साहित्यकार के रूप में ही नहीं है वरन् एक आविष्कर्ता के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

हिन्दी कविता—खुसरो ही भारत के अकेले कवि हैं जिन्हें उर्दू और हिन्दी दोनों में समान रूप से अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त है। उनकी 'खालिक बारी' बच्चे-बच्चे की जुबान पर है, इसके साथ ही उनकी पहेलियां और मुकरियां सभी को कण्ठस्थ हैं। उनकी माता हिन्दी भाषी थीं अतः हिन्दी उनकी मातृभाषा थी। 'गरतुलकमाल' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है कि उन्होंने हिन्दी में कविता की लेकिन उसे कोई विशेष महत्व नहीं दिया और न ही उसे संकलित करने का प्रयत्न किया। इस उपेक्षा का

कारण उस समय फारसी का राजभाषा होना था जबकि हिन्दी नवजात शिशु सदृश घुटनों के बल रेंग रही थी। परिणामतः तत्कालीन शायरों ने उसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अनुसन्धान से यह भी ज्ञात होता है कि उनके कलाम का कुछ अंश प्रक्षिप्त भी है; परवर्ती कवियों ने उसमें कहीं-कहीं पेबन्द लगा दिये हैं। बन्दूक, हुक्का, चिलम सम्बन्धी पहेलियां खुसरो की नहीं, क्योंकि उनके समय में यह वस्तुएं अनुपलब्ध थीं। डॉ० वहीद मिर्जा का मत है कि खुसरो ने हिन्दी में कविता जरूर की है और इस प्रकार उर्दू जबान या खड़ी बोली को अपने विचारों को प्रकट करने का—सम्प्रेषण का—साधन बनाया। उनकी गणना हिन्दी और कुछ सीमा तक उर्दू कविता के सबसे बड़े शायरों में की जा/सकती है। यद्यपि यह मानना कठिन है कि उनकी हिन्दी कविता की मात्रा फारसी कविता से कम है। फारसी कविता ने उन्हें शेख सादी, फिरदौसी, निजामी के समकक्ष पहुंचाया है, तथापि उन्हें लोकप्रियता हिन्दी कविता के कारण ही प्राप्त हुई। उनके दोहे, पहेलियां, मुकरियां किसे याद नहीं? उनकी हिन्दी कविता अभिनव मौलिकता की परिचायक है। 'खालिक-बारी' हिन्दी-फारसी का प्रथम शब्दकोश है—

खालिकबारी सरजनहार, वाहिद एक वदा करतार।
रसूल पैगम्बर जाने वसिष्ठ, यार दोस्त बोली जो असिष्ठ।
इस्म अल्लाह खुदा का नाम, गरमा धूप साया है छांव।
बराह तरीक सबील पहचान, अरथ तिहुका मरग जान।

खुसरो प्रथम कवि हैं जिन्होंने हिन्दी-फारसी मिश्रित गजल की रचना की है। कहीं-कहीं ऐसी शैली भी अपनाई है जहां एक पंक्ति फारसी की है और दूसरी हिन्दी की। इस प्रकार इनका काव्य विविध काव्य-रूपों से संपुष्ट है। ग्रन्थारम्भ में भूमिका लिखने की रीति उन्होंने ही डाली। पहेलियां, मुकरियां, दो सुखने आदि के प्रथम रचयिता वही हैं। काव्य के द्वारा अपने युग के इतिहास को—ऐतिहासिक घटनाओं को मूर्तिमान करने का श्रेय प्रथम बार उन्हीं के भाग में आया। यही नहीं, नित प्रति व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को काव्य में स्थान देने वाले पहले कवि भी वही हैं।

देश-भक्ति—खुसरो पहले राष्ट्रवादी मुसलमान हैं जिन्होंने भारतवर्ष के प्रति अगाध अनुराग प्रकट किया है। 'नुहसिपहर' जिस में लगभग 500 अशार हैं, में भारतवर्ष की महिमा-गरिमा का प्रशस्ति-गान इस प्रकार किया

है कि उसे रोम, इराक, खुरासान आदि से भी महान माना है—

तरजीहे मुलके हिन्द व अकल अज़ हवाए खुश ।
गर रोम व गर इराक व खुरासाने बर्फबार ।।

खुसरो ने अपनी मसनवी में भारत का गौरव-गान इस प्रकार किया है— (1) यहां के लोगों में विविध विद्याओं का, ज्ञान का व्यापक प्रचार है। (2) यहां के निवासी संसार की सभी भाषाएं शुद्ध रूप में बोल सकते हैं। (3) विदेशी ज्ञानार्जन के लिए भारत आते हैं। (4) अंकों का, शून्य का आविष्कार भारत में किया गया । 'हिन्दसा' शब्द 'हिन्द' और 'असा' (सम्भवतः प्रसिद्ध गणितज्ञ) के योग से बना है। (5) कलीला व दमना (करटक, दमनक) की कथाएं भारत में रची गईं और तत्पश्चात् फारसी, तुर्की में उनका अनुवाद किया गया। (6) शतरंज का आविष्कार भारत में हुआ। (7) भारतीय संगीत अन्य देशों के संगीत से श्रेष्ठतर है। (8) यहां का संगीत मनुष्य को ही मोहित नहीं करता वरन् पशु भी—उसे सुनकर मोहित हो जाते हैं। खुसरो के समान भाषा का जादूगर किसी देश में नहीं, वैसे वह बादशाह का साधारण-सा सेवक या चारण है। खुसरो ने यह भी कहा है कि भारत में तोता-मैना भी मनुष्य की बोली बोलते हैं, घोड़े भी ताल पर कदम उठाते हैं, बकरियां संतुलन के करतब दिखाती हैं, बन्दर रुपया, अठन्नी का अन्तर बता सकता है। खुसरो की दृष्टि में भारत पृथ्वी का स्वर्ग है और कहा कि आदम-हौवा स्वर्ग से निष्कासित किये जाने पर इसी देश में आये। पान और भारतीय वस्त्र की भी प्रशंसा खुसरो ने खूब की। दिल्ली की प्रशंसा में तो उन्होंने यहां तक कहा है कि यदि इस चमन की कहानियां मक्का सुने तो वह भी श्रद्धायुक्त होकर भारत की परिक्रमा करने लगे। उन्होंने भारत के पर्वों, त्योहारों, वेशभूषा, आभूषण, प्रकृति, संस्कृति, सभ्यता का चित्रण विशाल हृदयता के साथ किया है। अतः राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता का सच्चा और व्यावहारिक रूप खुसरो की हिन्दी कविता में देदीप्यमान है। वह एक बुद्धिवादी और जिन्दादिल कवि तो थे ही साथ में एक असाम्प्रदायिक मुसलमान भी थे। अगर किसी को आदर्श भारतीय मुसलमान माना जा सकता है तो अमीर खुसरो प्रथम श्रेणी में विराजमान होंगे। वह सच्चे मन से अपने आप को भारतीय मानते थे; इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"सम्भव है कोई मुझ से पूछे कि भारत के प्रति मैं इतनी श्रद्धा क्यों रखता हूं। मेरा उत्तर यह है कि भारत मेरी जन्मभूमि है, भारत

मेरा अपना देश है। खुदा-नबी ने कहा है कि अपने देश का प्रेम आदमी के धर्म-प्रेम में सम्मिलित होता है।"

संगीत:—खुसरो कवि के साथ-साथ एक महान संगीतज्ञ भी थे। कहा जाता है कि उन्होंने अपने युग के प्रसिद्ध संगीतज्ञ नायक गोपाल को अलाउद्दीन के दरबार में पराजित किया था। उन्हें 'मफताहुस्समां' का खिताब दिया गया। उन्होंने फारसी और हिन्दी में नवीन राग ईजाद किये। 'कौल' या 'कव्वाली' खुसरो की ही ईजाद है। उन्होंने अरबी-फारसी सूक्तियों को भारतीय और अभारतीय दोनों ही रागों में गाया। वह ईरानी-संगीत का शास्त्रीय गायन करते थे, क्योंकि उसमें भी नर-पशु सभी को आत्मविभोर करने की शक्ति है। अरब और भारत के संगीत की तुलना करते हुए उन्होंने भारतीय को श्रेष्ठतर माना है, क्योंकि अरब-संगीत का श्रवण कर ऊंट मरुस्थल में अपने मार्ग का अनुसरण करता है परन्तु भारतीय संगीत का श्रवण कर मृग अपना प्राणोत्सर्ग कर देता है। उन्होंने नवीन रागनियों की रचना भी की यथा तराना, कौल, गीत, नक्श, गुल, सरपदी, मजीग, ख्याल आदि। लोकगीतों तथा लोकधुनों पर गीत-रचना करने वाले खुसरो प्रथम कवि हैं। सावन की रिमझिम झड़ी में युवतियां अग्रलिखित गीत गाती हैं—

जो पिया आवन कह गए, अजहुं न आए, स्वामी हो।
जो पिया आवन कह गए, न आए बारह मास, स्वामी हो।

और जब नवेली वधू को अपने नैहर की याद आती है तो उसके कण्ठ से बरबस यह राग निकल पड़ता है—

अम्मां मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया।
अम्मां मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया।

खुसरो हिन्दी के मौलिक एवं प्रतिभासम्पन्न आदि कवि माने जाते हैं—वह हिन्दी-उर्दू दोनों के पिता हैं। इसके साथ वह एक आदर्श भारतीय मुसलमान हैं। उनका फ़ारसी कलाम शेख सादी, फिरदौसी जैसे फारसी के महान कवियों की कविता से भी श्रेष्ठतर है और एक उच्चकोटि के सूफी के रूप में भी वह अमर हैं। ऐसे महान व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए अवनी-अम्बर को न जाने कितने वर्षों तक चक्कर काटना पड़ता है।



प्राचीन ग्रन्थों में कश्मीर

—अवतार कृष्ण राज़दान

वैदिक काल से लेकर आज तक साहित्यकारों, इतिहासकारों तथा विचारकों ने कश्मीर को अपने चिंतन-मनन एवं वर्णन का विषय बनाया है। प्राचीन ग्रन्थों का पारायण करने से कश्मीर का इतिहास तो हमारे सामने स्पष्ट होता ही है कश्मीर का गौरव भी रूपायित होता है। प्रस्तुत लेख में मैंने प्राचीन ग्रन्थों में चित्रित कश्मीर से सम्बन्धित विभिन्न स्थितियों का अध्ययन किया है।

वैदिक-साहित्य में कश्मीर—

भारत का प्राचीन साहित्य वैदिक-साहित्य माना जाता है। इसके अन्तर्गत सभी उपनिषदों के अतिरिक्त चारों संहिताएं और ब्राह्मण-ग्रन्थ आते हैं। ऋग्वेद के नदी-सूक्त में सात नदियों का उल्लेख हुआ है जिनका नाम इस प्रकार हैं सिन्धु, शुतुद्री, वितस्ता, विपाशा, असिक्नी, पसपणी और मरुद्यवृद्दा।[1] इनमें वितस्ता और सिन्धु नदियों का प्रवाह कश्मीर में होता है। अंतिम यानी मरुद्यवृद्दा की पहचान 'मरुद्यवृद्दन' से होती है जो घाटी के उत्तर से दक्षिण तक बह कर अन्ततः किश्तवाड़ के निकट चिनाब में समाहित हो जाती हैं। कहा जाता है जब आर्यों ने कश्मीर में प्रवेश किया तो वे पहले इसी नदी के तट पर बसने लगे।[2] परन्तु कई आलोचकों का कहना है कि मरुद्यवृद्दन नाम की कोई नदी कश्मीर में विद्यमान नहीं थी और न

1 ऋगवेद 10, 75, 5.

2 Studies in Indian Antiquities. P. 51

आज है। इनका अनुमान है कि यह नदी जम्मू में बहती थी तथा वर्तमान चिनाब नदी इसका प्रतिरूप है। नदी-सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद के पर्वत-सूक्त में कम्बोज-पर्वत का उल्लेख मिलता है। आज कल इस को 'पामीर-पर्वत' कहते हैं जो कश्मीर के उत्तर में स्थित है। इस समय यहां चीन और रूस के राज्य मिलते हैं। प्राचीन काल में भारत और पामीर के बीच का रास्ता व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। कश्मीर के उत्तर-पश्चिम का भाग जिस को आज कल दरदिस्तान कहते हैं. इस यातायात मार्ग की महत्त्व-पूर्ण कड़ी माना जाता था।

अथरववेद में उत्तरापथ की कुछ विशेष जातियों का भी उल्लेख मिलता है जिन में कुछ इस प्रकार हैं—बाल्हीक महावरस, गांधारी और मुजावी।[1] परन्तु अब तक यह सिद्ध नहीं हुआ है कि इनमें से कौन-सी जाति कश्मीर में रहा करती थी। फिर भी इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका आर्य कबीलों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ब्राह्मण शतपथ और उपनिषदों में भी ऐसी ही जातियों का उल्लेख है जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—गांधारी, केकय, मद्र आदि।[2] परन्तु कश्मीर के पूर्व और पश्चिम में इनके नाम पर कुछ जनपद थे, जातियां नहीं। हो सकता है कि प्राचीन काल में यहां ऐसी कोई जन-जाति रही हो जिसका सम्बन्ध यहां के आदिवासी 'नाग' से रहा हो।

छान्दोग्य-उपनिषद तथा ब्राह्मण-शतपथ में कश्मीर की सीमाओं का विस्तृत उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इस भू-खण्ड की सीमाएं दूर-दूर तक फैली हुई थीं जिनकी सुरक्षा यहां की गगनचुम्बी पर्वत मालाएं करती थीं।[3] ऋग्वेद में तुर्वशों द्वारा रावी, चिनाब और जेहलम को पार करने का उल्लेख मिलता है। इस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन्होंने कश्मीर में भी प्रवेश किया था क्योंकि जेहलम का प्रवाह कश्मीर में ही होता है।[4]

रामायण और महाभारत में कश्मीर—

कश्मीर का इतिहास ईसा से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है। कहा जाता है कि भगवान रामचन्द्र जी यहां के पहले राजा हुए हैं। इस

---

1 Macdonal and Keith, Vedic Index II. P. 135-136.

2 अथरेवेद 5, 22, 5, 7, 9. शतपथ ब्राह्मण-10, 6, 12.

3 छन्दोग्य उपनिषद 5, 11, 4.

4 ऋग्वेद 7, 18.

समय यद्यपि यहां पर बहुत से राम मन्दिर पाये जाते हैं, फिर भी आज तक इस तथ्य की पुष्टि नहीं हुई है। वैसे रामायण-काल की यह जीवित गाथा है कि गौतम की पत्नी अहल्या पति-शाप के कारण गुलमर्ग[1] के दक्षिणीय पर्वत-उपत्यका अहल पत्थर[2] पर ही रामचन्द्र की प्रतीक्षा करती रही। बाद में इन्होंने इसी स्थान पर उसका उद्धार किया। वाल्मीकि रामायण में कश्मीर का स्पष्ट वर्णन हुआ है यथा 'कश्मीरे कपिलेश्वरः।' इसी प्रकार सीता-हरण काण्ड में इस भू-खण्ड का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

कश्मीर मण्डलं सर्वं शमी पीलु वनानि च।
पुराणि च सशैलानि विचिन्वन्तु वनौकसः॥

अर्थात हे वनवासियो! सारा कश्मीर-मण्डल पीलू एवं शमी वृक्ष के वनों और पर्वतीय प्रदेशों से भरा पड़ा है। तुम यहीं सीता की खोज करो। अयोध्या काण्ड में भी कश्मीर का अस्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है। यहां एक स्थान पर केकय देश[3] का वर्णन हुआ है। केकय देश में महाराजा दशरथ की प्राण प्यारी पत्नी कैकेयी का मायका तथा भरत जी का ननिहाल था। दशरथ के देहावसान पर जो दूत भरत जी को लेने केकय देश भेजा जाता है वह बाल्हीक प्रदेश[4] से होकर वहां पहुंच जाता है। पुराणों के भुवन कोषों में केकय क्षेत्र व्यास नदी से लेकर पश्चिम से गांधार तक तथा उत्तर में कश्मीर की सीमाओं को छूता हुआ माना गया है।

महाभारत में भी कश्मीर-मण्डल का स्पष्ट वर्णन मिलता है यथा 'कश्मीरः सिन्धुवीरा गन्धारा दर्शकास्तथा इति)।' राजतरंगिणी के अनुसार

---

1 गुलमर्ग का प्राचीन नाम 'गौरी मर्ग' है। यहां एक चश्मा है जहां पर हिन्दु लोग भगवती गौरी का वास समझते हैं। सन् 1580 ई० में जब कश्मीर का रंगीला राजा यूसुफशाह 'शक' अपनी प्राण प्यारी प्रेयसी हव्वाखातून के साथ विश्राम करने के लिए यहां आया तो इन्होंने गौरीमर्ग का नाम बदल कर गुलमर्ग रखा। गुलमर्ग का शाब्दिक अर्थ है रंगारंग फूलों की क्यारी।

2 अहलपथर दो शब्दों के योग से बना हुआ है—अहल्या प्रस्तर। बाद में यह बिगड़ कर अहलपथर बन गया।

3 रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग 68, 72

4 पंजाब के कई नाम हैं, जिन में बाल्हीक भी एक है।

यहां का प्रथम राजा गोनन्द–1 हुआ है जो 653 काली में सिंहासन पर बैठा। इसके अठारह वर्ष बाद कौरवों और पाण्डवों के मध्य महाभारत का युद्ध छिड़ गया। गोनन्द–1 जरासंध का निकट सम्बन्धी था। इस लिए उसकी सहायता के लिए उसने भी युद्ध में भाग लिया लेकिन वे बाद में श्री कृष्ण के तीर से मारे गये। गोनन्द–1 के उत्तराधिकारी दोमोदर–1 ने जब गंधर्व की बेटी के साथ शादी करने के लिए श्री कृष्ण के साथ युद्ध किया तो वे भी मारे गये। कुछ समय तक उनकी सगर्भा पत्नी ने कश्मीर की गद्दी सम्भाल कर जिस बेटे को जन्म दिया वह गोनन्द द्वितीय के नाम से यहां का राजा बना। उसने महाभारत के युद्ध में किसी भी पक्ष का साथ नहीं दिया। वे निष्पक्ष रहे। इन सभी बातों का उल्लेख महाभारत के युद्ध पर्व में हुआ है। यहां इन राजाओं को भारत के उत्तर में पड़े पहाड़ी क्षेत्रों के निवासी कह कर पुकारा गया है।[1] भारत के तत्कालीन पहाड़ी क्षेत्र, जो इसके उत्तर में पड़ते थे, आजकल की पवित्र भूमि कश्मीर से ही द्योतित किये जा सकते हैं।

पुराणों में कश्मीर—

पुराण कश्मीर प्रदेश के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। यहां से बहने वाली नदियों एवं आकाश को छूने वाली पर्वत मालाओं का वर्णन किसी-न-किसी रूप में इन पुराणों में हुआ है यथा मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण, वामन पुराण, कलिका पुराण, विष्णु पुराण आदि में। परन्तु कश्मीर के सम्बन्ध में जो ठोस एवं विश्वसनीय सामग्री प्राप्त होती है, उसका उल्लेख नीलमत पुराण में हुआ है। कहा जाता है कि नीलमत पुराण की रचना कश्यप के पुत्र नील नाग ने की है।[2] नीलमत पुराण में कश्मीर-सम्बन्धी इस

---

1 महाभारत, युद्ध पर्व 1, 17, 17

2 नीलमत पुरान के रचनाकार के सम्बन्ध में विद्वानों का विभिन्न मत रहा है। श्री हरगोपाल 'खस्ता' ने 'गुलदस्ता कश्मीर' में नीलमत पुराण का रचनाकार श्री चन्द्राचार्य को बताया है। कइयों का यह भी कहना है कि 'भृंगेश संहिता' ही नीलमत पुराण है जिसके रचयिता यहां के सुप्रसिद्ध विद्वान भृंगीभट थे। ये श्रीनगर से 34 मील दूर सागम गांव के रहने वाले थे। कई विद्वान नीलमत पुराण को ब्रह्मपुराण का प्रतिरूप मानते हैं क्योंकि दोनों पुराणों के कई श्लोकों में अर्थगत साम्य पाया जाता है।

तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है—

क: प्रजापतिरुद्दिष्ट: कश्यपश्च प्रजपति:
तेना सौ निर्मितो देश: कश्मीराख्यौ भविष्यति (291)

क: वर्ण से प्रजापति तथा कश्यप प्रजापति का अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसी के द्वारा निर्मित यह पवित्र देश कश्मीर नाम से प्रसिद्ध होगा।

इसी पुराण में कश्मीर देश की नियुक्ति इस प्रकार पायी जाती है —

कं वारि हरिणा यस्माद देशादस्माद पाकृतम्।
कश्मीराख्यं ततो ह्यस्य नाम लोके भविष्यति ॥

कं वर्ण से पानी का अर्थ ग्रहण किया जाता है। जिसने इस देश से पानी दूर किया। इस लिए इस का नाम संसार में कश्मीर होगा।

उपर्युक्त श्लोकों से 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से होती है। पहले श्लोक में कश्यप प्रजापति द्वारा बनाये गये देश को कश्मीर कहा गया है। दूसरे में कश्मीर उस महापुरुष के नाम पर कहा गया जिसने यहां से पानी को दूर किया।

पाणिनि और वराहमित्र के विचारों में कश्मीर—

कश्मीर मण्डल के सम्बन्ध में जिन अन्य भारतीय विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं, उन में पाणिनि और वराहमित्र का नाम उल्लेखनीय है। 'पाणिनि उनादि सूत्र' में कश्मीर शब्द की 'कशेमुटंच' इस पौराणिक धातु से 'ईरान' प्रत्यय तथा 'मुट' आगम पर सिद्धि होती है—'कश्मीरश्च देश विशेष: इति त्रिकाण्डशेष:।[1] पाणिनि के बाद वराहमित्र (500) का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने 'वृहत्संहिता' शीर्षक से अपने महाग्रन्थ में कश्मीर को भारत का उत्तरीय सीमांत-प्रांत ठहराया है जहां पर अभिसार, दार्व, खस तथा किर जाति के लोग रहते हैं।[2] महाभारत के अर्जुन का दिग्विजय-प्रकरण तथा भीष्म-पर्व में उल्लिखित जाति-सूची में अभिसार तथा दार्व जातियों का स्पष्ट उल्लेख है।[3] कहा जाता है कि ऐसी जातियों के लोग पुंछ और राजौरी में रहा करते थे। खस तथा किर जातियों का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं

---

1 अष्टाध्याय गण पथ, भाग 4, 2

2 वृहत्संहिता, 10, 9, 1

3 महाभारत भाग 8, 19, 43

मिलता है। अलबत्ता कल्हण ने राजतरंगिणी में फिर जाति के सम्बन्ध में यह लिखा है कि यह एक नीच जाति मानी जाती थी।[1] कई विद्वानों का यह भी कहना है कि इस जाति से सम्बन्धित लोग तिब्बती-बर्मी मूल के थे।

कुछ विद्वानों के अनुसार कश्मीर वह पवित्र भूमि है जो पाप रूप मलों को दूर करता है, जहां साधक लोग तपस्या द्वारा आत्मा के मलों का परिहार करने की साधना करते हैं, वह कश्मीर है—'कश्मल मीर यति—इति कश्मीरा' यहांके कुछ संस्कृत ग्रन्थों में कश्मीर को 'काश्मीराज' भी कहा गया है, अर्थात वह पुण्य भूमि जहां पर शताब्दियों से केसर और कुष्ट का उत्पादन होता है। केसर और कुष्ट कश्मीर के दो ऐसे उपज रहे हैं जिनके कारण इस भू-खण्ड की प्रसिद्धि विश्वव्यापी रही है।

चीनी विद्वानों की दृष्टि में कश्मीर—

प्राचीन काल से कश्मीर और चीन के मध्य घनिष्ठ सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। सन् 541 ई० में कश्मीर का पहला शिष्ट मण्डल चीन गया। उस समय चीन पर तांग वंश का कोई राजा राज करता था। उस समय इस राजा ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यह शिष्ट मण्डल यहां भारत के उस क्षेत्र से आया है जहां चारों ओर रूपहली पर्वत मालाएं और सोने के खेत पाये जाते हैं।[2] सन् 578 ई० में चीन के तानयंग नामक विद्वान ने कश्मीर को 'शीमी' नाम से अभिहित किया। चीनी भाषा में 'शीमी' उस क्षेत्र को कहते हैं जहां काफी ठंड हो और वर्ष में छः मास तक बर्फ पड़ती हो। चीन के तांगवंश के एक और व्यूरे के अनुसार सन् 713 ई० में कश्मीर से दो और शिष्ट मण्डल चीन गये थे जिनका प्रतिनिधित्व 'लो पी लो तथा को पी तो' कर रहे थे। इन दो नामों से कश्मीर के उन दो प्रतापी राजाओं चन्द्रपीड़ तथा ललितादित्य मुक्तापीड़ की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है जिनकी यश कीर्ति की किरण सारे संसार में फैली हुई थी।[2]

कश्मीर के सम्बन्ध में सब से विश्वस्त सामग्री प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसांग के यात्रा-संस्मरण से प्राप्त होती है। ह्यूनसांग ने कश्मीर में बहुत

---

1 राज तरंगिणी; तरंग 3, श्लोक 310

2 वही, तरंग 3, श्लोक 312

3 Life of Yuanchany by Bealson. Vol. I. Page 261

समय व्यतीत किया। सन् 633 ई० में इन्होंने तोस मैदान दर्रे को पार करके पर्णोत्स (वर्तमान पुंछ) में प्रवेश किया। तत्पश्चात बहराम गली से कश्मीर आये। घाटी में अपने विश्राम के अनन्तर इन्होंने यहां के स्थानों की यात्रा की। अपने यात्रा-संस्मरण में वे लिखते हैं—'कश्मीर घाटी की गोलाई 1400 मील थी। यह सारी घाटी चारों ओर से ऊंची ऊंची सिलसिले वार पर्वतीय चोटियों से घिरी हुई थी। घाटी के मध्य भाग में एक एक बड़ा दरिया बहता था। जो 9 मील लम्बा और अढ़ाई मील चौड़ा था। घाटी में बौद्ध-विहारों की संख्या 100 से भी अधिक थी जिनमें महात्मा बुद्ध की आदम कद मूर्तियां विराजमान थीं।[1] इसके अतिरिक्त ह्यूनसांग ने अपने यात्रा-संस्मरण में यात्रा के सभी साधनों का उल्लेख किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि यात्रा के दौरान उन्हें पथरीले रास्तों, काले पहाड़ों,[2] एवं रस्सियों के बने पुलों से गुज़रना पड़ा। कुछ विद्वानों का कथन है कि लकड़ी एवं रस्सियों के बने पुल पुराने आविष्कार नहीं है, मगर ह्यूनसांग के अनुसार यहां इनका प्रचलन काफी समय पहले से रहा है। अन्त में इन्होंने लिखा है कि सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर बहुत सी गुफाएं थीं जिन में विषैले सर्प तथा नरभक्षी पशु रहते थे।

ह्यूनसांग कश्मीर में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार देख कर बहुत प्रभावित हुए थे। यही कारण है कि इन्होंने यहां के विश्व-प्रसिद्ध शारदा विश्वविद्यालय[3] में बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थ रत्नों का अध्ययन किया। ह्यूनसांग के बाद चीन से एक और विद्वान यहां आया। इनका नाम था ओंकांग। इन्होंने अपने यात्रा-प्रसंग में कश्मीर-प्रदेश का संकेत करते हुए लिखा है—'मैंने भारत के उस क्षेत्र की यात्रा की है जहां पर मनुष्य को आध्यात्मिक शान्ति मिलती है।' इनके पश्चात् चीन से कश्मीर जो पर्यटक और

---

1 Life of Yuanchany by Bealson. Page 265

2 काला पहाड़ 'कोहे कराकरम' को कहते हैं। इसकी गणना कश्मीर के ऊंचे पर्वतों में होती है। यह समुद्र तल से 28250 फीट ऊंचा है। इसके दामन में गिलगित्त तथा स्कर्दू हैं।

3 महाराजा अशोक के राजत्वकाल में कश्मीर के केरन ज़िला (तथा कथित आजाद कश्मीर) में शारदा यूनिवर्सिटी स्थापित थी। इस समय वहां शारदा नाम से एक गांव है परन्तु यूनिवर्सिटी के ध्वंसावशेष प्राप्त नहीं होते।

श्रौर विद्वान श्राये उनमें उल्लेखनीय हैं श्रासंग, वसुबन्धु, बुद्धभद्र, चीयान, चीमांग श्रौर फाह्यान। इन सभी पर्यटकों ने श्रपने यात्रा-संस्मरणों में कश्मीर प्रदेश की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

श्ररबी विद्वानों की दृष्टि में कश्मीर—

कश्मीर के सम्बन्ध में विश्वस्त एवं ठोस सामग्री प्रस्तुत करने का श्रेय श्ररबी के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रलबेरूनी को प्राप्त है। इन्हें मोहम्मद गजनी के शाही दरबार में काफी सम्मान प्राप्त था। 'किताब-उल-हिन्द' में इन्होंने लिखा है कि मोहम्मद गज़नी ने भारत में हिन्दुश्रों पर तरह-तरह के श्रत्याचार किये जिसके परिणामस्वरूप वे सुरक्षित स्थानों की श्रोर चले गये। ये स्थान थे कश्मीर श्रौर बनारस। ये ही ऐसे दो स्थान थे जो मोहम्मद गजनी श्रपने शासनाधीन न ला सका था। वे लिखते हैं —

"कश्मीर के लोग पादचारी हैं। वे लम्बी से लम्बी यात्रा पर पैदल जाते हैं। राजा-महाराजा पालकियों में सफर करते हैं।"

"कश्मीर में प्रवेश करने का सुगम-मार्ग हज़ारा कस्बे के बोलूरा गांव से गुज़रता है। कश्मीर-घाटी का क्षेत्रफल चार फरख है। इसके मध्य जेहलम नदी प्रवाहित होती है। जेहलम पर लकड़ी के बने बहुत से पुल हैं।"

"तीर्थ-स्थानों में कश्मीर उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भारत में बनारस श्रौर कुरुक्षेत्र हैं।"

"चैत्र मास के प्रथम दिवस को कश्मीरी श्रकदोस[1] कहते हैं। यह दिन कश्मीरी बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। इसी दिन राजा मुती ने तुर्कों को पराजित किया था"।



---

1 यहां 'श्रकदोस' का तात्पर्य नव-वर्ष के पहले दिन से है जिस को कश्मीरी में 'नवरेह' कहते हैं। विक्रमी सम्वत् के श्रनुसार इसी दिन से नया वर्ष शुरू हो जाता है।

कथा - धारा

※

कर्फ्यू

—रतन लाल शान्त

सोमनाथ ने गुलाम दीन और इसके साथी दो सिपाहियों को, यों कहें कि पिता लाला को सौंप दिया और खुद ऊपर चला गया। दीवार पर लटके कोट की जेबें टटोलीं और जब वहां केवल तीस पैसे पाये तो उसे याद आ गया कि आज उन्नीस तारीख है। पत्नी से पैसे मांग लेने की जुर्रत वह कर न सका क्योंकि वह उसे समझा न सका था कि उसने इस महीने की पूरी तनख्वाह क्या की। कर्फ्यू लगे तेरह दिन हुए थे। इन दिनों उस का खर्चा खास बढ़ा नहीं। बल्कि जो पैसा चाए का कप-आध कप पीने आदि पर स्कूल में खर्च हुआ करता है, वह तो अवश्य घटा। सिगरेटों की संख्या भी इन दिनों आधी से कम हो गई, क्योंकि दिन के चार पांच घण्टे वह यहीं इसी कोठरी में बिताया करता। उसका पिता लाला यहां चला आता, लकड़ी का एक पुराना संदूक खिड़की के पास घसीट ले जाता। खिड़की तो पहले ही बन्द कर देता। फिर संदूक पर खड़ा होकर रोशनदान की दरारों में से कर्फ्यू से वीरान हो गई सड़क का तमाशा देखता और पुलिस वालों के घूमते आकारों के साथ-साथ पुतलियां भी घुमाता।

फिर सोमनाथ की तनख्वाह कैसे खर्च हुई? वह स्वयं को समझाता कि कर्फ्यू के कारण सब निठल्ले हो गये—गर्मी बढ़ने लगी तो दही-लस्सी के लिए हाय-हाय मचने लगी। नहीं तो पेट बढ़ने लगा। धोखे-बहाने से ही सही, पुलिस वालों की मिन्नत-मनुहार करके इन्हीं दिनों दस बारह बार मांस मंगाया गया। बैठे बैठे और फुर्सत की ज्यादती के कारण सब के स्वाद विविध होने लगे और कभी घी, कभी मिठाई आदि की फरमाइशें भी सोमनाथ पूरी

करता गया। यह और बात है कि बैठे बैठे केवल वह खुद ऊब चुका था। शेष सब—उसकी पत्नी, मां या दादी—मामूल की तरह खिड़कियों पर बैठे ज़िंदगी का आनंद ले रहे थे। पिता खिड़कियों और दरवाजों की दरारों में से तमाशा देखता और लड़के को कमेंट्री सुना सुना कर मन बहलाया करता। सिर्फ वही था जो कोठरी की दीवार से पीठ टिकाए या तो दीवार का मिट्टी का पलस्तर या अपनी पीठ घिसाता रहता।

मगर यह सब उसका खुद को समझाने का तर्क मात्र था। न उसने यह बात कभी पत्नी से कही और न उसी ने पूछ कर जानने की कोशिश की। इस समय जेब में केवल तीस पैसे पाकर उसे पसीना छूटने लगा। यह हिम्मत भी नहीं थी कि अभी नीचे चला जाता और गुलामदीन से कह देता कि चाय तो बन गई है लेकिन खाली पीनी होगी। न ही उसका जी कर सकता था कि पिता से पैसे मांग लेता। आज सुबह कितने ज़ोर जब्र के बाद गुलामदीन को चाय पीने पर राज़ी कर सका था! जब सोमनाथ पट्टन स्कूल में मास्टर हुआ था तो गुलामदीन उसके पहले पहले प्रिय शिष्यों में से एक था। स्कूल का यह अकेला लड़का था जिसे जीप, एक सरकारी जीप, स्कूल छोड़ जाती और सांयं फिर लेने आ जाती। कई बार सोमनाथ इसी जीप से पट्टन से श्रीनगर आया। स्कूल में सोमनाथ इसी बारसूख लड़के के कारण एक सफल मास्टर हो सका इसलिए वह गुलामदीन के साथ मास्टरी की अपेक्षा मित्रता करता था। गुलामदीन मैट्रिक में कभी पास न हुआ इसका दुख उस की अपेक्षा स्वयं सोमनाथ को था। बहुत फायदा उठाया सोमनाथ ने गुलामदीन की दोस्ती का लेकिन सब से बढ़कर पट्टन से श्रीनगर उसकी बदली इसी कारण हो सकी। कर्फ्यू की आज की सुबह जब सोमनाथ ने सांगोपांग गुलामदीन को देखा तो वह मुंह न फेर सका। वह हैरान भी हुआ। यह पुलिस इन्सपेक्टर गुलामदीन था। बीसएक कांस्टेबल लेकर रात भर ड्यूटी देता रहा होगा। सोमनाथ ने खिड़की पर खड़े खड़े ही इसकी काफी मिन्नत समाजत की। कहा कि रतजगा किया होगा—दो घूंट चाए पीते जाना। जब्र किया और आखिर मना लिया उसे। और अब सोमनाथ देखता है कि उसके पास केवल तीस पैसे हैं। इन से पाव भर दूध लिया जा सकता है, रोटी नहीं।

सिर्फ एक रास्ता था—मां से पैसे मांगना। सोमनाथ ने जब उससे कहा

तो उसने पहले अपनी कही—'देख रे ! ये खिड़कियों के पट और किवाड़ उसे दिखलाना । टूटे कांच के टुकड़े दिखलाना । पूरी बात समझाना ।'

'उसे वही बात सुनाऊं जो वह जान न पाए, तो अच्छा ?' उसने मां को डांटा ।

खिड़कियों के कांच कर्फ्यू होने से एक दिन पूर्व एक क्षुब्ध जुलूस ने तोड़ डाले थे । सोमनाथ सोचता कि कोई उसका नाम न जाने, उसकी बात कहीं न हो । किसी को मालूम न हो कि सड़क के किनारे वाला यह मकान उसी का है और जुलूस वाले दिन उसी का नुक्सान हुआ था। रुपए उधार लेकर उसने खिड़कियों की मुरम्मत कराई होती, कांच भी लगवाए होते मगर कर्फ्यू था । घण्टा भर कर्फ्यू खुलता तो सब्जी, रोटी वालों की दुकानें ही खुलतीं, शीशे वालों की नहीं । नगर के जिस भाग में सारी दुकानें रोज़ की तरह खुली रहतीं और जहां कर्फ्यू नहीं लगा था वहां जाने के लिए 'पास' होना चाहिए था जो मास्टरों को दिया नहीं गया था । सोमनाथ उस क्षण की सोच कर घबरा उठता जब कर्फ्यू हटा दिया जायेगा और स्थिति के सामान्य हो जाने पर उसके मकान के सामने भीड़ लगा हुआ करेगी...

'इस मकान की खिड़कियां तोड़ दी गयीं ।'

'कांच चूर-चूर किए गए ।'

'पत्थर बरसाए गये !'

फिर वह खुद भी भीड़ में घुस कर यदि किसी से इस का कारण पूछेगा तो उसे सूचित किया जाएगा कि जुलूस पर ऊपर से पहले पत्थर बरसाए गये फिर गर्म मांड डाल दी गई, तेजाब की बोतलें फेंक कर तोड़ दी गयीं आदि । उस समय वह किस-किस को समझाता फिरेगा कि वहां उस समय उसकी लूली और बहरी दादी थी जो सामान्य दिनों की तरह घिसट-घिसट कर खिड़की के पास आकर अपनी मल चिलमची फेंक आई थी और फिर पत्थरों की वर्षा से शदीद ज़ख्मी कर दी गई थी । जुलूस और हड़ताल की खबर सुन कर ही सोमनाथ की पत्नी और मां बच्चों के स्कूल चली गई थीं; उन को लिवाने के लिए, और सोमनाथ का पिता हब्बाकदल में एक और जुलूस में सम्मिलित हो कर नारों की आवाज़ में आवाज मिला रहा था ।

वह बीवी का कोई ज़ेवर बेच डालता और खिड़कियां-द्वार बनवाता

लेकिन कर्फ्यू का क्या करता ? अब उसका एक दोस्त, और एक बड़े आदमी का बेटा इन्सपेक्टर गुलामदीन उसके यहां आया है तो भला उस से ऐसी बातें कही जानी चाहिएं ? कभी नहीं। खैर सोमनाथ ने मां का तर्क अनसुना कर दिया और उससे पैसे ले लिए। पैसे लेकर सीधा नीचे चला गया। भीतर कमरे से गुलामदीन और पिता के वार्तालाप की भनक कानों में पड़ी। कर्फ्यू के दौरान पुलिस वालों का रवैया विचाराधीन था। उसे लगा कि वह इस समय भीतर चल कर इस बातचीत की दिशा नहीं बदलता या विषयांतर नहीं करता है तो लाला जाने क्या-क्या कहता जाएगा। लाला कह रहा था—

'कश्मीरी तो बस कश्मीरी हैं। ये 'बाहर' की पुलिस ससुरी...खिड़की से भात सब्ज़ी की जूठन भी नहीं फेंकने देती है। कूड़ा आखिर ले कहां जायें। इतना हो-हल्ला करते हैं कमबख्त कि बेचारे बच्चे डर कर कोनों में दुबक जाते हैं...... ।'

लाला के बोलने का ढंग इतना कृत्रिम था कि यथार्थ उससे छिपता नहीं था। निस्संदेह बाहरी पुलिस कई मामलों में कठोरता बरतती थी। जूठन या फालतू पानी आदि वे कभी सड़क पर फेंकने नहीं दिया करते थे। कर्फ्यू के बीच की घण्टे भर की छूट में सोमनाथ का पहला काम होता था—कूड़े-जूठन को दूर फेंक आना। यह बुरा नहीं था। जब सड़कों की सफाई नहीं हो रही हो तो उन्हें गंदा करना अवैध माना जाना उपयुक्त लग सकता था। फिर इनके द्वारा बच्चों को डराना धमकाना भी गलत था। वास्तव में इनका व्यवहार बच्चों के प्रति बड़ा कोमल था। बच्चे अपने दरवाज़ों पर बैठे रहते और इनसे दिन भर बतियाते रहते। वे इन की वर्दी के बारे में इन से पूछताछ करते इन से टोपियां मांग कर खुद पहनते। इन की बन्दूकें छूने देने के लिए इन से बिनती करते। इन्हें कश्मीरी सिखाते और पांच या दस पैसा पकड़ा कर इन से छोले-टाफियां मंगवाते। ये पैसा लेकर बन्द दुकानों के दरवाज़े झकझोर डालते और भीतर सहमे बैठे छोले-खोमचे वालों से छोले लेते। सोमनाथ का छोटा बच्चा तो दिन भर ऊपर कमरों में लेफ्ट-राइट करता रहता और भाग दौड़ से दीवारें हिला देता, दो-दो गिरह फर्श धंसा देता, कंधे पर डंडा लेकर घर के सदस्यों को मारता और अपनी टूटी-फूटी नकली हिन्दी में कहता—'हम छोटा मदि प्रदेश है। तुम किदर जाता ? बागो, हम गोली लाएगा।'

सोमनाथ ने सोचा कि बीच में बोल कर विषयांतर कर दूं। जाने ताव में आकर लाला क्या-क्या बोलता जाए। इसी बीच गुलामदीन ने कहा—

'यह (बाहरी पुलिस) जल्द ही वापिस बुलाई जाएगी। अब कश्मीरी पुलिस को ही हर कहीं ड्यूटी पर लगा दिया जाएगा, महाराज !'

सोमनाथ ने विचारा—यह हो सकता है भला ? यह होता भी हो तो इस इन्सपेक्टर को कैसे पता लग सकता है ? मगर यह एक 'बड़े' आदमी का बेटा है। मेरा असम्भव प्राय तबादला इसी के कारण हो सका। यह मैट्रिक में कभी पास नहीं हुआ लेकिन सीधा इन्सपेक्टर हो गया। यह बिल्कुल ठीक हो सकता है।

सहसा उसे अपने कमरे की खिड़कियों, टूटे कांचों का ध्यान आया। वह पथराव के समय खुद घर पर नहीं था लेकिन दादी कह रही थीं कि सब से पहला पत्थर कश्मीरी पुलिस वालों ने ही मारा था।

पर यह सुन कर उसके पिता का रंग फक क्यों पड़ गया ? खोखली जबान से इन्सपेक्टर से कह उठा—

'नहीं जी, यह कैसे हो सकता है ? इनको मध्य प्रदेश आदि से यहां लाया क्यों गया है...? इन्हें कर्फ्यू हटने से पहले ही लौटाया जाना था तो बुलाए क्यों गए ?...और फिर एक कानूनी पहलू भी है इसका...' लाला ने नाक पर से चश्मा उठाया। इसे पोंछने के बहाने जैसे एक लम्बी कानूनी बहस करते-करते थोड़ी देर सुस्ताने लगा हो। मगर सोमनाथ देख रहा था कि उस की आंखों के तारे चंचल हो रहे थे। डर के कारण हर बार ऐसा ही हुआ करता था। उसने अपनी वक्तृता यों पूरी की—'इनको अगर पता चला कि इन्हें अविश्वास के कारण वापिस लिया जा रहा है तो हो सकता है कि ये विद्रोह कर बैठें।'

यह बात लाला ने इस ढंग से कही जैसे वे जरूर विद्रोह कर देते और वह खुद उन सब का ट्रेड यूनियन लीडर था, अफसर को या मालिक को धमका रहा था कि तुम अपना अन्यायी कदम वापिस लेने पर मजबूर किए जाओगे।

इस बात की प्रतिक्रिया गुलामदीन के मुख पर क्या हुई, यह सोमनाथ ने नहीं देखा। अलबत्ता उसे याद आया, कहीं उसने सुना था कि कश्मीरी

ग्रौर अकश्मीरी पुलिस में मतभेद हो गया है। वह कांप उठा। वह इसके परिणामस्वरूप खुद कुचले जाने की बात जानता था। मगर लाला का व्यवहार उसे अवांछित लगता था। उसका मकान दो सड़कों के मिलन बिंदु पर था। यों कहें कि त्रिकोण के एक कोने पर। इससे उसके मकान का एक दरवाज़ा एक सड़क ग्रौर पिछला दूसरी सड़क पर खुलता था। मुहल्ले का पहला मकान होने के कारण जुलूस के दिन पथराव का पहला शिकार यही बनाया गया। उससे न कोई खिड़की ग्रौर न कोई दरवाज़ा साबुत रहा। कर्फ्यू लगा तो सब से ज़्यादा मुश्किल इन्हें ही हुई। ग्रागे भी सड़क ग्रौर पीछे भी। ग्रागे भी पहरा ग्रौर पीछे भी। नज़रबन्द हो गए थे ग्रपने ही घर में। गलियों वालों के मज़े थे। गली-गली से होते हुए सारा शहर घूम फिर ग्राते थे। लेकिन सड़कें खाली थीं—कुत्ते भी गायब हो गए थे। सोमनाथ ही जानता था कि कभी ग्रावश्यकतावश सड़क को पार करके गली में जाने के लिए कितनी मिन्नतें करनी पड़ती थीं ग्रौर तब पुलिस वाले पसीज जाते। लाला इन तेरह दिनों में घर से एक बार भी बाहर नहीं निकला। भीतर ही बैठा रहता, ग्रपने कमरे की खिड़कियां बन्द किए। जब कर्फ्यू का तमाशा देखने की तबीयत होती तो चला ग्राता ऊपर सोमनाथ के कमरे में। खिड़की बन्द कर देता, लकड़ी का पुराना बक्सा पास घसीट लाता ग्रौर उस पर खड़ा होकर रोशनदान की दरार में से तमाशा देखता। फिर खड़े-खड़े ही कमेंट्री चालू कर देता। सोमनाथ इसीलिए लाला के इस समय के वार्तालाप से जलभुन रहा था। भला लाला इन बाहरी पुलिस वालों की तरफ से कह रहा है कि ये बगावत कर बैठेंगे—इन के साथ उसे क्या हमदर्दी है।

लेकिन गुलामदीन ग्राराम से लाला से कह रहा था—'नहीं महाराज, इनकी कुछ नहीं चलेगी। यहां इनकी ऐसा करने की जुर्रत ही नहीं है।' सोमनाथ ने हामी भरी। गुलामदीन कहता जा रहा था—'देखिए! रात को दिन की ग्रपेक्षा ज़्यादा खतरा रहता है। रात को हर कहीं कश्मीरी पुलिस ही ड्यूटी पर लगाई जाती है। जब हमारी नाईट ड्यूटी पूरी हो जाती है तो ये दिन के लिए ग्रा जाते हैं। दिन को भी ये करते क्या हैं? ग्राप तो इन्हें देखते ही होंगे ड्यूटी देने के बजाए ये दुकानों के पटड़ों पर बैठे गप्पें हांकते रहते हैं। लेकिन हम तो रात भर जाग कर ड्यूटी देते रहते हैं। ग्राप ने रात को कहीं कोई दुर्घटना होते सुनी है...?'

सोमनाथ ने जोर से सिर हिला कर नहीं की। अब कहीं लाला फिर कोई कानूनी पहलू न ढूंढ निकाले। बात टालने के उद्देश्य से गुलामदीन से कहा उठा—

'भई गुलामदीन, हमारे लिए ज्यादा कठिनाइयां पैदा हुई हैं, क्योंकि आगे पीछे हर तरफ यही पुलिस दिन को रहती है। परसों से घंटे भर के लिए कर्फ्यू हटाया गया तो राहत मिली। फिर भी समय असमय किसी चीज की जरूरत आ ही पड़ती है।'

गुलामदीन तुरन्त कह उठा—'अरे, आप ने संदेश क्यों नहीं भिजवाया मुझे? मैं अपने सिपाही के हाथ सब चीज़ें भिजवा देता—या बाजार से मंगवा देता। क्यों टीकालाल?' यों तो गुलामदीन के ये दो सिपाही हर बात पर सिर हिला रहे थे। इस प्रश्न पर टीकालाल नामक एक सिपाही, जिस के माथे पर सिंदूर का बड़ा सा तिलक लगा था, कह उठा—'मैं तो रजब सा'ब के लिए रोज अमीराकदल से मांस ले आता हूं तो इन की दो और चीज़ें कौन भारी होंगी?'

टीकालाल की शक्ल सोमनाथ को पहचानी लगी। रजब साहब सड़क पार का सोमनाथ का पड़ोसी था और कर्फ्यू लगने से दो दिन पहले मुहल्ला छोड़ कर चला गया था—सोमनाथ और दूसरे मुहल्ले वालों के आश्वासनों और रक्षा की प्रतिज्ञाओं के बावजूद। परसों वे सब लौट आए थे। एक हिन्दू पुलिस वाला इनके घर का काम कर रहा है यह उसने पहले भी सुना था। गुलामदीन ने उससे शिकायत की—

'काहे, मास्टर साब, आप तो हमें भूल ही चुके? कल रात पूछ ही लिया होता कि रात की ड्यूटी है, आराम तो नहीं करेंगे! वैसे पिछले तीन चार दिनों से हम पूरा रतजगा कर रहे हैं। अब तो आदत पड़ने लगी है।'

टीकालाल भभका—इस पर बाद में गुलामदीन की त्योरियां भी चढ़ीं—

'दुकानों की पटड़ियों पर ठीक लेट भी न सके आज की रात! पसलियां अभी भी दुख रही हैं।' मगर सोमनाथ ने सफाई दी—'वाह! मुझे कैसे पता चलता कि आप की ड्यूटी इधर लगी है। मुझे तो आप की नौकरी का पूरा पता न था। मुझे मालूम नहीं था तो आप ने क्यों नहीं बताया। खुद द्वार खोल कर चले आते। मकान तो पहले से मालूम था।'

सोमनाथ जानता है कि उसने झूठ बोला है। सड़क पर के सिपाहियों की ड्यूटी बदल जाती, उनके चाय लिए आ जाती या खाना, बिना पास के किसी को धर लिया जाता या कोई भी बातचीत करते। इस सब के साक्षी उसके मां, बाप, पत्नी, दादी रहते क्योंकि दिन भर खिड़कियों पर बैठे रहना और सड़क का तमाशा देखना उनका विनोद बन गया था। कल रात भर इनके मकान के आगे पहली बार कश्मीरी पुलिस आई। ज्यों ही पुलिस वाले ट्रक से उतरे तो कश्मीरी बातचीत सुनाई दी। बच्चे दौड़े-दौड़े दरवाज़े पर चले गये और क्षण भर में, समाचार लेकर आये। दादी ने ज्यों ही सुना तो उसकी कनपटियां तक लाल हुई। लाला बिस्तर में घुस पड़ा कि मुझे नींद आ रही है, आज तो दिन में घण्टा भर भी सो न सका। मुझे कोई जगाए नहीं। सोमनाथ ने बत्ती बुझाई और खिड़की खोल कर देखा। उसे गुलामदीन की आवाज़ साफ सुनाई दी। उसे अचम्भा नहीं हुआ बल्कि उसकी अपनी भविष्य वाणी आज सच निकली। स्कूल के दिनों गुलामदीन के रंग-ढंग साफ बता रहे थे यह लड़का बड़ा होकर पुलिस वाला बनेगा। वह तो यही देखता रहा था कि जो लड़के पुलिस के लिए समस्या होते हैं, वे ही बड़े होकर सफल पुलिसमैन बनते हैं। मगर उसने हौले से खिड़की बन्द कर दी और अन्दर ही रहा। लेकिन सुबह अनायास उसे सामने पाया तो उसे बुलाना ही पड़ा।

'मैं तो यों ही कह रहा था मास्साब, मैं रात को रजब साहब के यहां सोया। आप नहीं जानते। रजब साहब हमारे वालिद के नज़दीकी दोस्तों में से एक हैं और फिर इनके साथ हमारे रिश्ते राजनीतिक और दलगत भी हैं।'

सोमनाथ ने जब से रजब साहब को देखा, मुहल्ले के प्रेज़ीडेंट के रूप में ही देखा। काला अक्षर भैंस बराबर। रजब 'साहब' ग्वाला था और प्रेज़ीडेंटी की बदौलत घर बार, बेटों पोतों के फले फूले और उन्नत परिवार को गुण और संख्या दोनों दृष्टियों से समृद्ध करता जा रहा था। यह और बात है कि दस्तखत करते समय पहले अंतिम अक्षर ब फिर ज और फिर र लिखता। र, ज, ब के बजाय ब ज र। रजब के बजाय बजर (अर्थात बडप्पन)।

टीका लाल और दूसरे सिपाही ने जंभाइयां लेना शुरू किया था और सोमनाथ को सहसा याद आया कि उस की जेब में रुपया है और उसे बाज़ार

से दूध तथा रोटी मंगवानी है। वह खड़ा हो गया पर गुलामदीन ने कहा—'अब हम चलते हैं, मास्टर जी ! यहां चाय पीना हमारे लिए शरम की बात है।'

इस पर सोमनाथ ने स्नेह प्रकट करते हुए कहा—

'कहां चलोगे भाई ? मैं भी देखता हूं कैसे जाते हो, कैसे चाय पीना नहीं मानते हो ? मेरी नज़रों में अभी पट्टन स्कूल के ही लड़के हो।'

गुलामदीन ने उठ खड़े होने की चेष्टा तक न की और सोमनाथ कमरे से निकल गया। वह नीचे चला गया। दरवाज़े के पास थोड़ी देर खड़ा रहा और जब चक्कर लगाता हुआ एक पुलिस वाला उसे देख गया तो लौटकर उनसे मुस्कराते हुए कह उठा—

'काहे पण्डित साहब ! खूब बतिया रहे हैं इनसपिट्टर साहब तो !'

उसकी नज़रें चंचल थीं और ध्वनि में व्यंग्य था।

'क्या करें भाई ! सब करना पड़ता है !' सोमनाथ ने 'छोटा मोटा' जवाब दिया। सोचा चलो केवल संकेत में कह दिया। साफ बात रहीं बनादी। करता रहे अर्थ। सिपाही हंसा और आगे बढ़ा पर सोमनाथ ने पुकारा—

'ऐ भाई ! श्यामाचरण यह एक रुपया है। ज़रा मेहरबानी करके आधा सेर दूध लाना। बाकी पैसों के कुलचे खरीदना नानवाई से। आपको ज़रूर कष्ट होगा, लेकिन......'

सिपाही ने बात बीच ही में काट कर उसे जवाब दिया। वह व्यंग्य में हंसता जा रहा था।

'अच्छा चाय पिलाई जा रही है मौलाना साहेब को ?' फिर सोमनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही बात पूरी की—

'अरे कष्ट काहे का पंडिज्जी। लाइए !'

उसने सोमनाथ से लोटा और रुपया लिया। दाएं बाएं नजर दौड़ाई। दूर कोई सड़क पार करने की कोशिश कर रहा था। देखते देखते बाकी सारे सिपाही जागृत हुए। डंडों से सड़क पीटते हुए उधर ही सब दौड़ पड़े। सिपाही श्यामाचरण इत्मीनान के साथ पार चला गया और गली के बाजार में खो गया। सोमनाथ ने किवाड़ बंद किए और वहीं इन्तजार करता खड़ा रहा।

पार वाली गली में पूरा बाजार था लेकिन गली होने के कारण वहां कर्फ्यू नहीं था। इन्हीं पुलिस वालों की कृपा से सोमनाथ के घर की जरूरतें पूरी हो जाया करती थीं।

'यह लीजिए पण्डित जी !' श्यामाचरण ने दूध भरा लोटा और कुलचे उसे थमा दिए।

सोमनाथ यथाशीघ्र ऊपर गया। वहां एक नई ही रूदाद सुनी—एक और ही मामला उठ खड़ा हुआ था। दादी बहू से कह रही थी कि जिन बरतनों में नीचे चाय ले जाओगी उन्हें वहीं तोड़ फैंकना। बहू अर्थात सोमनाथ की पत्नी कह रही थी कि किन बरतनों में चाय ले जाऊं—अलमारी की चाभियां ही खो गई हैं, मिल नहीं रहीं, बरतन उसी में हैं। मां कह रही थी - शम्भुनाथ के घर से टी सेट मंगा लो। वे कैसे जान पायेंगे कि उन में चाय कौन पीता है। यह सूझ सोमनाथ की बीवी को जची और वह सीधी ऊपर चली गई और पिछली खिड़की खोल कर सड़क पार के पड़ोसी शम्भुनाथ की समवयस्क बहू को पुकारा। कर्फ्यू की शान्ति उसकी आवाज से भंग हुई। इस असाधारण व्यवहार से उत्सुक मुहल्ले की दूसरी स्त्रियां-बहुएं भी अपनी खिड़कियां खोल कर सुनने लगीं।

'ज़रा अपन टी-सेट देना जी ! मेरी अलमारी की चाबियां खो गई हैं। घंटे भर से घर की धूल छान रही हूं पर वे मिल नहीं रहीं। टी सेट के बिना तो काम चल नहीं सकता। 'इन' का कोई दोस्त आया है। इन्सपेक्टर गुलामदीन। बड़ी पहुंच है इसकी। कह रहा था सरकारी जीप चार पहर द्वार पर खड़ी रखवा लूंगा। जहां आना-जाना हो, निश्चित हो कर घूमना फिरना और जरूरत की चीज़ें बाजार से मंगवा लेना। अब तुम ही सोचो, इसे खासू[1] में तो चाय नहीं न देंगे।

'गुलामदीन' शब्द पर सोमनाथ की पत्नी ने काफी जोर डाला। कर्फ्यू की खामोशी में यह शब्द चारों ओर प्रतिध्वनित हुआ। वह शायद चाहती थी कि रजब साहब की घर वाली भी सुने लेकिन उनकी खिड़कियां पूर्ववत् बन्द थीं; शायद उन्होंने सुना नहीं था। जिन्होंने सुना उन्होंने जल्दी-जल्दी अपनी-अपनी खिड़कियां बन्द कर दीं और भीतर जा बैठीं। शम्भुनाथ की

---

1 खासू—कश्मीरी हिंदुओं के घरों में प्रयुक्त होने वाला कांसे का प्याला।

बहू भी सुन कर अन्दर गई और थोड़ी देर बाद निकल कर बड़ी गम्भीरता से कहा—'हमारे टी सेट का कोई भी बरतन साबुत नहीं रहा है। हत्थे ही उखड़ आते हैं इनके और यों बेकार पड़ जाते हैं।'

कह कर उसने सटाक से खिड़की बन्द कर दी।

हक्की बक्की हुई सोमनाथ की पत्नी ने नीचे आकर सोमनाथ से कहा—'जाने क्या हुआ इन कलमुंहियों को? अब क्या करें?'

सोमनाथ जान गया था कि क्या हुआ था इनको! उसने भी 'गुलामदीन' शब्द की अनुगूंज सुनी थी। लेकिन पत्नी से बहस करने का समय नहीं था। उसने किसी से कुछ नहीं कहा। जूते पहने और सीधा नीचे चला गया। श्यामाचरण को आते देख उसे बुलाया और कहा—'भाई श्यामचरण जी! बहुत ज़रूरी काम आ पड़ा है। पार जाना है। उधर की तरफ। जरा मेहरबानी करके मेरे साथ-साथ चलना।'

श्यामचरण ने हंसते हुए उससे पूछा—'अरे पंडित जी! कहां जाइएगा? हम तो चाय का इंतजार कर रहे हैं। आज मौलाना साहब आ गए तो हमारी चाय मारी जाएगी क्या?'

'नहीं भय्या! चाय सब के लिए बनी है। आप को भी पिलायेंगे। ज़रा पार वालों से बरतन लेने थे।'

सिपाही की आड़ में चलते-चलते सोमनाथ ने एक ही उछाल में सड़क पार कर दी और सीधा रजब साहब के मकान में प्रविष्ट हुआ। ऊपर आकर रजब साहब की पत्नी फ्रेंच द्यद को सलाम कहा। फ्रेंच ने कुशल पूछी और फिर दोनों ने बार-बार कर्फ्यू को बुरा भला कहा कि इसकी वजह से दो पड़ोसियों में आना जाना ही न रहा। अब की सोमनाथ ने एक बार और फ्रेंच द्यद के मुहल्ला छोड़ कर चले जाने पर नाराजगी प्रकट की। कहा कि आप लोग क्यों चले गए। हमारे घर रहते। मैं आपका बाल भी बांका न होने देता। फ्रेंच ने उत्तर में सोमनाथ से फिर कहा कि हमें काहे की चिंता है। खुदा के बाद हमारे रखवाले हमारे पड़ोसी हैं। समय कुसमय हो गया है। लेकिन यह समय भी नहीं रहेगा। अच्छे दिन भी आयेंगे जब फिर पुरानी-सी माया-ममता होगी। पड़ोसी को चेहरे का दाग बताया गया है जो हर समय सामने रहता है। नाते-रिश्तेदार महीनों बरसों बाद मिलते

हैं और चले जाते हैं पर हमसाया तो रोज़ मिलता है।......फिर भी देखो हम चले गए तो घर की रखवाली एक हिन्दु— टीकालाल—के जिम्मे थी।

जल्दी में होने के कारण सोमनाथ ने मतलब की बात की 'मेरा एक दोस्त पुलिस अफसर बन गया है। आज उसकी ड्यूटी इधर ही लगी है। उसे चाय पीने को कहा है मैंने। किस्मत का खेल देखो, हमें अपने बरतन मिल नहीं रहे। आप अपने तीन चार प्याले दीजिए।'

फ्रेंच वृद्ध ने अपनी बहू से कहा—'ज़रा अपने चीनी के बरतन निकाल लाना री! सोमनाथ को चाहिए।'

फिर सोमनाथ से कहा—'क्यों, हमारे रोज़मर्रा के प्याले क्यों ले जाओगे? रहम आता है मुझे इन बेचारे सिपाहियों पर। टीकालाल को हमने पचास रुपए दिए और फिर इन दिनों यहीं खाता-पीता रहा।'

फ्रेंच की इस बात ने गुलामदीन की बात पर प्रकाश डाला। रजब साहब के साथ उनका दलगत रिश्ता है और उसी ने सिपाही टीकालाल को इनके यहां रहने की आज्ञा दी है। फ्रेंच कहती ज रही थी—'फिर बेचारे ये बाहर के सिपाही हैं। जाने किस-किस मुल्क के! यहां बेचारे परवश और कटे हुए! अलग! हमें इन पर रहम आता है। ये हम लोगों का पकाया खाते तो हम कभी कभार घूंट भर चाय या कौर भर भात खिलाया ही करते इन्हें।'

इतने में उसकी बहू टी सेट लेके आ गई। उसे देख के फ्रेंच वृद्ध ने सोमनाथ से कहा—'ले जाओ! यह नया टी सेट है हमारा। अभी किसी ने जूठा भी नहीं किया है इसे। लुत्फ आएगा चाय का इन्हें। बेचारों को टूटे-फूटे टीन के भांडे दिए गए हैं। आह! हमें तो बहुत तरस आता है इनके हाल पर।'

सोमनाथ के होठों तक बात आ-आ के रह गई। वह फ्रेंच वृद्ध की गलत फहमी दूर करना चाहता था कि इस टीसेट में 'बाहरी' मध्य प्रदेश के पुलिस वालों को चाय नहीं पिलानी थी बल्कि कश्मीरी पुलिस को, गुलामदीन को। लेकिन ऐसा कहने का अर्थ था एक लम्बी बातचीत का आरम्भ करना। उसे जल्दी थी अतः वह फ्रेंच को सलाम कहके चलता बना।

अब वह ज़रा आश्वस्त होकर गुलामदीन के पास जा बैठा। थोड़ी देर

में चाय आ गई । नया टीसेट देख कर लाला कुछ परेशान और कुछ हैरान हो गया । उसने चाय नहीं ली । सफाई देते हुए, जो अयाचित थी, बोला—'क्या फर्क है भई ? मैं इस वक्त लिपटन चाय[1] नहीं पीना चाहता मैं तकरीबन रोज किसी मुस्लमान दोस्त के यहां चाय पीता ही हूं......ऐसी कोई बात नहीं।... ..अभी परसों ही, एक दोस्त ने दावत पर बुलाया था। खुतना था उसके लड़के का । गजब की जियाफतें थीं ।'

सोमनाथ चाय का घूंट भर लेता और निगल डालता लेकिन हर बार उसमें से कड़ुआहट बाहर निकल आती । लाला की बातों से चाय का स्वाद भी कसैला होता लगा । फिर भी वह भगवान को धन्यवाद दे रहा था कि लाला ने इतनी देर गुलामदीन की संगति सामान्यतया सही । जाने उस की गैर हाजिरी में उसने गुलामदीन को खुतने जैसी कितनी और बातें गढ़ कर बता दी होंगी...... ।

दिन में एक बार लाला जरूर सोमनाथ के कमरे में जाया करता था और यथाक्रम खिड़की बन्द कर देता, लकड़ी का पुराना बक्सा पास घसीट लाता, उस पर खड़ा हो जाता और रोशनदान की दरारों के बीच में से कर्फ्यू में मध्य प्रदेश पुलिस की कारगुजारी देख-देख कर खुश हो लेता और खुशी को कमरे के कोने में दुबके सोमनाथ को सुना-सुना कर, कमेंट्री चालू करके प्रकट करता—'आज सख्ती बरत रहे हैं......बिना पास के किसी को जाने नहीं देते ।......अरे ! यह किसे पकड़ लिया ?......अभी-अभी तो गली से बाहर आया था ।......समझा रहा है। इसे हाथ पांव हिला-हिला कर कुछ जतला रहा है । मगर यह मानेगा उसकी ?......सच, मध्य प्रदेश की पुलिस ही यहां सफल रह सकती है - ...बड़ी काबिल है यह पुलिस......मारा उस पर डण्डा । हां मारो-मारो.......ये बाज नहीं आयेंगे वरना......इजार की तरफ कुछ दिखा रहा है उसे लेकिन वह तो इसे वापिस गली में भेज के ही दम लेगा......उधर से दूसरे पुलिस वाले ने किसी पगड़ी वाले को पकड़

---

1 डिब्बाबंद पत्ती चाहे कसी भी ब्राण्ड की हो, कश्मीरी के लिए 'लिपटन' है। शायद इसी कम्पनी की यही पत्ती पहले यहां परिचित कराई गई होगी। कश्मीर की अपनी चाय कहवा, उबल चाय (दूध मिला कहवा) और शीर (नमकीन चाय) है।

लिया शायद !......अरे ! अरे हां ! वही तो है। यह तो कृष्ण जू है। यह भला आज मट्टन से यहां कहां आ गया !......परेशान हो गया होगा बेचारा कर्फ्यू एरिया में प्रवेश करके, शहर में तो......भला यहां किन के यहां जाएगा......कहां जाएगा ? इधर ही आ रहा हो तो ?......सोमनाथ, देखो कहीं हमारे ही यहां न चला आए ! इसका कुछ ठीक नहीं ! देखो, तुम खिड़की नहीं खोलना, नीचे जाकर मां से भी कह दो !......क्या बहस हो रही है इसकी सिपाही के साथ भला !......कृष्ण जू ने शायद इसे जनेऊ दिखाया ......या फिर जेब से पास निकाल रहा होगा !......नहीं' पास कहां से लाएगा ! बेचारा ! जनेऊ ही दिखा रहा होगा इसे ! छोड़ दिया पुलिस ने ......छोड़ा, हां, छोड़ दिया अब......नहीं छोड़ता ?......कश्मीरी पुलिस होती तो...'

ऐसे अवसरों पर सोमनाथ गुस्से से कांपने लगता और बसते पर खड़े होकर रोशनदान की दरार में से झांकते और कमेंट्री करते बाप को वहीं छोड़ कर कमरे से आंधी की तरह निकल जाता।

यही लाला इस समय बता रहा था कि कोई फर्क नहीं। सोमनाथ चुप रहा। गुलामदीन भी चुपचाप चाय पीता रहा। टीका लाल और दूसरा सिपाही रोटियों पर हाथ चला रहे थे। चुप्पी भारी होने लगी तो उसे तोड़ने के लिए सोमनाथ कह उठा—'देखो भाई गुलामदीन ! क्या मालूम कर्फ्यू और कितनी देर के लिए रहे। हमें बड़ी मुश्किल होती है। मकान ही ऐसी जगह पर है कि सामने भी और पीछे भी सड़क है। बीसियों चीज़ों की जरूरत पड़ती है। लोगों को देखता हूं जोक-पर-जोक खरीदारी करते हुए।'

गुलामदीन ने पूछा—'पास नहीं बनवाया आपने ?'

'नहीं भाई ! ऐसा कोई अफसर हमारा परिचित नहीं जो पास दिला सकता। कोई अपना रिश्तेदार भी नहीं।'

'तो यह कौन बड़ी बात है ?' गुलामदीन ने टीका लाल से कहा—'कल मास्टर जी के लिए पास लेते आना।' फिर सोमनाथ से कहने लगा—'आप को पास लेकर क्या लेना है ? शाम को हमारी ऐलानग़ाड़ी घूमती है। उसी में बैठ कर आप अमीराकदल चले जायें। वहां कर्फ्यू नहीं है। करें, जितनी

खरीदारी करना चाहें। लौट कर उसी से आ जाया करें। पुलिस की गाड़ी को कौन रोकता है?'

लाला यह सुन कर बड़ा खुश दिखाई दिया। मगर सोमनाथ जानता था कि उसने यह बात केवल लाला की ऊटपटांग बातों के फलस्वरूप हुई चुप्पी को तोड़ने के उद्देश्य से छेड़ी थी, वरना आज महीने की उन्नीस तारीख है और उस की जेब में केवल तीस पैसे हैं।

'देखो, सोमनाथ! यही तो मैं तुम से कह रहा था। भगवान ने यही तो फर्क कर दिया है अपने और पराए में। अभी गुलामदीन साहब को इधर ड्यूटी पर लगे एक ही दिन हुआ और हमें कितनी सुविधा होने लगी है। ये बाहरी पुलिस वाले तो जालिम हैं जालिम! जरा भी दया नहीं होती इन में!'

सोमनाथ को चाय के इस घूंट में भी कसैलापन लगा। निगलने के बजाए उसने वह खिड़की से फैंक दिया।

गुलामदीन ने कहा—'इसकी बात ही न करें आप! बाहर वालों की बात ही से मुझे घिन आती है। यह यहां के ढंग क्या जानें। इनके यहां रहने से ही दंगों को हवा लगती है। हम इन्हें कैसे बर्दाश्त करते हैं यह आप से क्या कहें!.......'

खैर, इनको शीघ्र ही हाजिर लाइन ड्यूटी किया जाएगा। हमने इनको कई बार कुछ विशिष्ट घरों से भात लेते देखा है, चाय मांगते देखा है। मगर आप ही सोचिये। 'एक' घर से मांगना और 'दूसरे' पर जुल्म करना; अकारण तंग करना......।

सब से बढ़ कर तो इन से हमारे जवानों के अनुशासन पर बुरा असर पड़ता है......।'

सोमनाथ ने आधा पिया कप नीचे रख दिया और उठ खड़ा हुआ। वह अनायास पसीना-पसीना होने लगा। आंगन में से बातचीत की आवाज आ रही थी जो वह साफ सुन रहा था। उसे मालूम था यह मध्य प्रदेश की पुलिस है जिसे उस की मां चाय पिला रही है।

शोर में से एक बात उसने साफ सुनी। सिपाही श्यामाचरण उस की मां से कह रहा था—'पंडित जी कहां हैं, माता जी! खूब कुलचा मंगा लिया। जरा हम भी स्वाद लेते कश्मीरी कुलचा का।'

किसी काम का बहाना करके वह कमरे से बाहर निकल गया......



देवदार और देवदार

—अशोक जेरथ

देवदार के वृक्षों के साथ उसका अस्तित्व कब से बन्धा है उसे कुछ ठीक से याद नहीं। कई वर्षों से उसने अपने आप को सेनिटोरियम की पारदर्शक दीवारों के अन्दर ही पाया है, घुटता हुआ, जिनके उस पार बड़े बड़े देवदार के वृक्ष बिल्कुल मौन कब से चुप्पी साधे खड़े हैं। उसने वृक्षों की चुप्पी को आत्मसात कर लिया है। वह अक्सर उन देवदार के वृक्षों को निहारा करता। चान्दनी रात में तो उसे लगता कि शीशे की पारदर्शक दीवार को लांघकर उस ओर चला जाए जहां वह हो और चान्दनी से नहाए देवदार हों। वह उन्हें अपने बाहुपाश में बांध लेना चाहता पर उसकी यह इच्छा कभी पूरी न हो सकी।

"लीजिए, दवाई पीजिए।" नर्स ने उसकी तन्द्रा को तोड़ा था।

उसने हाथ उठाकर बिना उस ओर देखे दवाई का कप थाम लिया था जो ऊपर से छलक आया था। दवाई को कंठ में उंडेल कर उसने कप उल्टा कर तिपाई पर टिका दिया था जिसमें से तरल पदार्थ बहकर तिपाई के कपड़े को चीरता हुआ 'त्रिप त्रिप' करता नीचे गिरने लगा था।

"डॉक्टर नहीं आईं क्या ?" अपने में ही खोए हुए उसने प्रश्न किया था।

'आने ही वाली हैं।'

"हूं ! 'आने ही वाली हैं' " उसने दोहराया था।

"अगर न भी आयें तो क्या फर्क पड़ता है"। उसका ठन्डा सा स्वर उभरा।

नर्स चली गई थी और वह फिर देवदार–वृक्षों की सूनी खामोशी में उलझ गया था।

दूर देवदारों के बीच की एक पगडण्डी पर जो रेखा सी दीखती थी उस पर कोई छाया सी उभर रही थी।

उसने निःश्वास लिया।

'हूं ! तुम यहां भी नहीं जीने दोगी........'

"तुम दूर बहुत दूर क्यों नहीं चली जातीं, यहां से दूर, जहां देवदारों की ऊंचाइयां भी न दिखाई दें।" उसने देखा छाया उभरकर आकृति बन गई है और धीरे धीरे स्पष्ट होना शुरू हो गई है।

"अरे ! यह तो डाक्टर है।' डाक्टर किवाड़ खोलकर अन्दर आ गई थी। पल भर उसने अपने आप को ठहराया था और फिर बैग को एक तरफ रख कर अंगीठी की ओर उन्मुख हो गई थी जिसमें चिंगारियां ठण्डी पड़ कर सो गई थीं। उसके शरीर में झुरझुरी सी आ गई मानो उसे अन्दर आने पर ही सर्दी का आभास हुआ हो। उसने अपने शाल को ठीक तरह से लपेटा और अंगीठी के पास रखी कुछ लकड़ियों को उसमें डाल दिया। फिर पास में रखी सीख से चिंगारियों को खाक की परतों से जुदा कर दिया था।

बाहर देवदार की शाखाएं धीरे धीरे हिलने लगी थीं। हवा में वेग बढ़ रहा था।

"डाक्टर आज बर्फ पड़ेगी क्या ?"

वह चौंक उठी थी। फिर उसकी उदास आंखों में झांकती हुई पल भर को खामोश खड़ी रही थी।

"कुछ कहा नहीं जा सकता"।

"देवदार तो हिल रहे हैं"। (मानो बर्फ पड़ने का प्रतीक हों)

"हां हवा में वेग बढ़ रहा है" उसने बाहर झांका।

"यह देवदार कब से खड़े हैं डाक्टर" ?

वह सोचती रही कि क्या उत्तर दे।

"मैं जब से आया हूं इन्हें इसी प्रकार खामोश अपने में डूबा खड़े देखता

रहा हूं, क्या यह थकते नहीं ?" उसने गहरा निःश्वास लेकर कहा जैसे वह उन्हें खड़ा देखते-देखते थक गया हो।

डाक्टर ने उसे बेबसी के साथ निहारा। उसकी आंखों में पीड़ा थी। कितने रोगी यहां पर आकर टूट जाते हैं। वर्फ हर बार पड़ती है, पिघल जाती है पर यह देवदार सदा खड़े रहते हैं। मौन, अविचल ! उसे हर रोज कितना झूठ बोलना पड़ता है। अगर इसकी कोई सजा है तो......वह आगे न सोच पाई।

"डाक्टर !"

"हूं !"

"एक बात पूछूं। सच बताओगी ?" उसने पहली बार डाक्टर के चेहरे की ओर उन्मुख होकर 'सच बताओगी' पर जोर देकर पूछा मानो आज तक उसने कभी सच न बोला हो। उसकी आंखों में अभी भी सन्देह की झलक थी। वह पूछ तो रहा है पर उसे विश्वास नहीं होता कि उत्तर सही ही मिलेगा।

'क्या मैं सच बता पाऊंगी ?' शायद नहीं, उसने सोचा था।

"क्या मैं ठीक हो जाऊंगा, क्या मेरे इस अस्तित्व में अभी भी कुछ बचा है जिसमें कोई आशा की किरण समाई हो।...."

"..................."

"अगर नहीं तो तुम लोग बताते क्यों नहीं ?" वह रैश हो गया था। और उसे खांसी ने आ दबाया था। डाक्टर ने उसे कन्धे से पकड़ कर सहारा दिया और फिर उसकी छाती को मला था। खांसी इतनी तीव्र थी कि उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े थे।

"माफ करना डाक्टर मैं भावावेश से भर गया था लेकिन आप ही बताएं कि इस तरह घुट घुट कर जीना भी क्या जीना है। जहां कोई चाह नहीं, टीस नहीं। जहां सब कुछ कहीं ठहर गया है। डाक्टर मैं कब से इस पारदर्शक लिफाफे में बंद पड़ा हूं जिसके उस पार दृष्टि तो जाती है पर मानसिक अनुभूतियां इसी में घुट घुट कर मर रही हैं। सब कुछ कहीं बिखर गया है। सब कुछ है..."उसे लगा कि वह कुछ गलत कह गया है। वह सिर नीचे कर एकदम मौन हो गया। डाक्टर ने उसे निस्सहाय दृष्टि से देखा था और फिर सांत्वना के दो शब्द—

"जल्द ठीक हो जाओगे ! मर्द हो कर घबराते हो ?"

"मर्द।" इस शब्द का विश्लेषण वह आज तक नहीं कर पाया था और फिर इसका सम्बन्ध इस सन्दर्भ में कहां से आ गया। वह सोचता रहा था।

"डाक्टर कभी कोई ऐसा मरीज भी आया है जो कभी इस सेनिटोरियम की दीवार को तोड़ कर चला गया हो ?" उसकी नजरें अभी भी थकी-थकी, झुकी हुई थीं।

वह चुपचाप खड़ी रही थी। हवा का वेग और बढ़ चला था। उसने उसकी आंखों में देखने का प्रयास किया था जो अभी भी झुकी हुई थीं; फिर एक निःश्वास—

"अनेक.........!"

'हूं।' वह मुस्कराया था, पीली दर्दभरी मुस्कान—जिसके पीछे शायद सब कुछ छिपा था; वह, उसका अस्तित्व और समय के जख्म जिन्हें वह आज तक नहीं भर पाया था।

डाक्टर उसकी मुस्कान की ताव न लाकर क्षण भर को सिहर उठी थी। फिर अपना स्टेथेस्कोप सम्भालती हुई उसका निरीक्षण करने लगी थी। वह खामोशी से निरीक्षण करवाता रहा। डाक्टर ने चार्ट देखा। उस पर कुछ लिखकर फिर उसी कील पर टांग दिया।

वह आंखें बंद किए बिस्तर पर पीठ के बल लेट गया था। उसने अपने हाथ माथे पर रख लिए थे, जैसे किसी गहरे विचार में डूब गया हो। वह जानती थी कि हर बार निरीक्षण के बाद वह निढाल हो जाता है। उसे विश्वास ही नहीं होता कि कभी वह स्वस्थ होकर बाहर की दुनियां में भी जा पाएगा।

अनचाहे ही डाक्टर के मनोमस्तिष्क पर उसका व्यवहार तथा चरित्र हावी हो गये थे। जिसे उसने रोज-मर्रा के जीवन में महसूस तक न किया था। सैकड़ों रोगी यहां पर आए हैं पर वह सब से विचित्र है। बिलकुल अकेला और उस अकेलेपन में भी वह अपना पूरा संसार समाए है जिस की भनक तक भी डाक्टर तथा दूसरे रोगियों को न मिल सकी थी। उसके विगत इतिहास के बारे में कोई नहीं जानता और न ही वह किसी व्यक्तिगत चर्चा में पड़ता ही है। उसका केस स्टडी करने के लिए केस हिस्ट्री बनाने में डाक्टर को एड़ी चोटी का जोर लगाना पड़ा था और जो तथ्य उसके सामने आए उससे उसे

लगा था कि वह शारीरिक रोगी तो है ही पर उसे मानसिक रोग भी कीड़े की तरह खाए जा रहा है। अतः मानसिक तौर पर वह टूट चुका था। कभी-कभी अचेतन में ही उसे महसूस होता कि कहीं पर, किसी कोने में उसकी अनुभूतियों के कुछ कण उसे छूते हुए कहीं निकल गए हैं। कहां ? वह कभी ट्रेस न कर पाई थी। वह अनचाहे ही उसके करीब आ गई थी।

"डाक्टर जब बड़ी बर्फ पड़ती है तो जानवर उसके नीचे दब कर मर जाते हैं न ?......"

"........................"

"डाक्टर अगर बर्फ की रात कोई बाहर रह जाए तो ?......तो क्या वह जीवित रह सकता है ?"

डाक्टर के लिये उसके प्रश्नों का उत्तर ढूंढना कठिन हो गया था। वह अपना स्टेथेस्कोप सम्भाल कर किसी दूसरे रोगी के निरीक्षण हेतु आगे बढ़ गई थी।......

उस दिन पूरा चांद निकला था। चांदनी की पतली दूधिया चादर देवदार वृक्षों से होती हुई नीचे मैदान तक फैल गई थी। उसे उस दिन लग रहा था कि उसके लिए नवीन स्फूर्ति का दिन है जिस का इन्तज़ार वह काफी अरसे से कर रहा था। वह उस वातावरण में खो जाना चाहता था। वह चाहता था कि उसका सब कुछ पिघल कर रोशनी की किरणों में बदल जाए और शीशे के उस ओर जाकर समा जाए।

अब देवदार थोड़े-थोड़े हिलने लगे थे। हवा में वेग और अधिक बढ़ चला था। देखते-देखते वातावरण बदल गया था और फिर रुई के फाहे देवदारों के सिरों से होते हुए नीचे गिरने लगे थे। वे कहीं-कहीं वृक्षों की गहरी हरी फर पर भी बैठ जाते। लगातार बर्फ गिरती रही और वह देखता रहा......देखता रहा, जब तक बर्फ पड़ती रही।

धीरे-धीरे सब सामान्य हो गया था। फर्क केवल इतना सा था कि अब बर्फ के गद्दे पर चांदनी की पतली चादर बिछ गई थी।

वह अपना लोभ संवरण न कर सका।

"वे बर्फानी रातें और चांदनी...उफ ! बस और कुछ नहीं" उसे लगा

कि पुराने बन्ध कहीं खुल गए हैं। वे सब अनुभूतियां जो कभी यख़ हो गई थीं पिघल कर तरल बन गई हैं जो उसकी नस-नस में बट रही हैं। कोई उसे बरबस खींच रहा है। वह उठा; लेकिन वर्षों की कमजोरी...फिर प्रयास किया...एक ऐसी ललक थी जिसे कमजोरी तथा वर्षों के ज़ख्म न रोक पाए।...

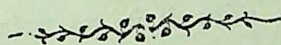
सुबह डाक्टर ने उसके केबिन के किवाड़ खुले पाए थे। अंगीठी बुझ कर ठण्डी हो चुकी थी और उसका बिस्तर खाली था। वह एक दम चौंक उठी थी। उसे लगा सब ठण्डा हो गया है। उसकी रगों में बहता हुआ रक्त भी कहीं ठहर गया है।

कुछ क्षणों बाद सामान्य होकर उसने चौकीदार को बुलाया तो वह सहमता सा अन्दर घुस आया पर ठण्डी अंगीठी तथा खाली बिस्तर देख कर सब समझ गया—"साहब, उन्होंने ही कहा था कि आप एक बार फिर मुआयना करने आयेंगी क्योंकि उनकी तबीयत कुछ ज्यादा खराब है। साहब मैंने अन्दर से ताला नहीं लगाया।"

डाक्टर को लगा कि कहीं अन्दर ही अन्दर उसका ज़ख्म बढ़ता जा रहा है। उसने अपने आपको एक कुर्सी पर ढकेल दिया था। वह निढाल हो गई थी।

वह किस लिए अब इस सेनिटोरियम में जीवित है? वह अब उस क्षण को, उस सम्बन्ध को पहचानने लगी थी जिसे उसने वर्षों तक नकारा था।

पारदर्शक दीवार के उस ओर देवदार शान्त से खड़े थे। कोई तूफान आकर गुजर गया था। उसे लगा कि उस न टूटने वाली दीवार के चीथड़े कहीं बिखर गए हैं जिन में से उसका अस्तित्व साफ झांक रहा है।



दायरे

—ज्योतीश्वर पथिक

सांझ की लालिमा को अंधेरा निगलने जा रहा है और ऐश ट्रे में पड़ी हुई सिग्रेट ज़िन्दगी की तरह पल-पल सुलगती जा रही है। आज ही मुझे प्रेरणा का पत्र प्राप्त हुआ है—"बड़ी दीदी का अफेयर पकड़ा गया है। बेचारी अजीब दुविधा में पड़ी है, मैंने कहा था, 'दीदी खुले आम बगावत करके सिविल मेरेज करलो या...भाग जाओ इस वातावरण को लात मार कर जहां हर सांस में घुटन भरी हो!' उसके 'वो' भी बड़े लजीले स्वभाव के मिस्टर हैं! मैंने चाहा था समझा बुझा कर दोनों का रास्ता साफ करूं—मगर क्या करो 'वो' शाई है तो दीदी घुट-घुट कर मरना चाहती हैं। अरुण, अगर मैं उसकी जगह होती तो कुछ से कुछ कर डालती कम से कम मम्मी डैडी से डामिनेट न होती। हमें जन्म दिया है तो क्या? पाला-पोसा है तो क्या गाय भैंसों की तरह जिस खूंटे पर चाहें बांध दें। बाकी फिर लिखूंगी, मैं आज कल काफी असमंजस में हूं। आशा है तुम सब समझ गए हो।"

प्रेरणा सेंट जोजफ कालेज में बी० ए० फाईनल में पढ़ती है, उसकी दीदी अल्पना दो वर्ष पहले एम० ए० करके मिशन स्कूल में पढ़ाने लगी है। मेरी जब स्टेट बैंक में नियुक्ति हुई थी तो मैं उनके साथ वाले फ्लैट में रहा करता था। अल्पना शान्त और गम्भीर स्वभाव की लड़की थी और वह दूसरों की ज्यादती को भाग्य का चक्कर समझ कर सहन कर लिया करती थी। वास्तव में उसका स्वभाव समझौतावादी था मगर प्रेरणा कभी यह सहन नहीं कर सकती थी। तीखे नयन नक्श की वह लड़की फ्री-फ्रैंक और

फीयरलेस थी। एक बार एक टैक्सी ड्राईवर ने अल्पना को देख कर सीटी क्या बजाई कि प्रेरणा ने जूतों से उसकी तब तक पिटाई की जब तक उस ड्राईवर ने नाक रगड़ कर अल्पना के पांव को हाथ न लगाए।

दोनों बहनें एक सामान्य परिवार की बेटियां हैं। उनके डैडी एक कोआप्रेटिव सोसाइटी में आडिटर हैं। बड़ी मुश्किल से प्लस और माईनस जोड़ कर घर के बजट को पूरा कर पाते हैं। जब से अल्पना की नौकरी लगी है वातावरण में तनाव कम हो गया है मगर वह नहीं चाहते कि अल्पना उस साईंस मास्टर से शादी करे जो उसी की तरह तीन सौ रुपये मासिक कमाता है। वे उसके इस रिश्ते से अपने भविष्य की राहें खोलना चाहते हैं। उन्होंने दो एक बार उसे सोसाइटी के मैनेजिंग डायरेक्टर से मिलाने का प्रयत्न भी किया है ताकि वह उनके अंडर ग्रैजुएट लड़के के लिये सुशील बहु का स्थान पूरा कर सके। मगर वह अपने डैडी के निर्देशनों पर पूरी नहीं उतर सकी। अब उन्हें अपना स्कोप धुंधला नजर आ रहा है। उन्होंने बहुत चाहा था कि उनकी बेटी और बास के बेटे में कुछ लिंक पैदा हो जाए ताकि वे अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकें मगर उनकी सारी गेम का पांसा ही पलट गया इस लिये डैडी कुछ उखड़े-उखड़े रहते हैं।

प्रेरणा ने अल्पना को समझाने की बहुत कोशिश की है। अल्पना, साफ कह दो कि मैं इस खोखली व्यवस्था से समझौता नहीं करूंगी। क्या तुम इन पर बोझ हो ? खुद कमा लेती हो। अपना भला बुरा समझती हो।

मगर नहीं—अल्पना कुछ नहीं बोलती। एक मशीन की तरह रोज स्कूल जाती है और शाम को गुम सुम बैठ कर सोचती रहती है ! और प्रेरणा को उसकी इस समझौतावादी प्रवृत्ति से चिढ़ है।

कहानी की एक-एक कड़ी को जोड़ता हुआ मैं सिग्रेट का कश लेने की सोचता हूं मगर सारा सिग्रेट जल चुका होता है। मैं नया सिग्रेट सुलगाता हूं। एक कश लेता हूं कि विचारों की यह शृंखला कहीं समाप्त हो सके मगर नहीं—यह सिलसिला शायद कभी समाप्त न होगा।

मुझे प्रेरणा की शोख और चंचल प्रवृत्ति बहुत भाती है मैं उसकी तेजी-तर्रारी को बहुत पसंद करता हूं मगर मुझे अल्पना से भी हमदर्दी है, सहानुभूति है। मैं चाहता हूं कि वह अपने मम्मी डैडी से खुल कर बात कर

सके और अपना अधिकार मांग सके—काश कि प्रेरणा की आत्मा अल्पना में चली जाती मगर वह मोम की गुड़िया की तरह गुम-सुम रहती है जिस की नाक जहां चाहो मोड़ दो। मैं उसकी कायरता से घृणा करता हूं।

मुझे अल्पना के डैडी मिस्टर नागपाल का खत मिला है। कुछ दिनों के लिये बुलाया है। मैं उनके मन की बात जानता हूं। वे अपनी बेटी को 'कनविंस' करने के लिये मेरी सेवा प्राप्त करना चाहते हैं। वे समझते हैं कि मैं मसीहा बन कर उनकी मुश्किल आसान कर सकता हूं। वैसे भी मुश्किल के समय उनके परिवार को सलाह देने का काम मैं ही करता रहा हूं।

पहुंचने पर मैं पाता हूं कि उनके घर का वातावरण फीका-फीका और घुटा-घुटा सा है, सभी लोग सैल्फ सैंटरड (आत्मकेंद्रित) हैं। प्रेरणा की चहल-पहल भी धीमी पड़ चुकी है, मिस्टर नागपाल गहरी सोच में गुम हैं, मिसेज नागपाल को तो कभी अपने परिवार से रुचि नहीं रही। वे हमेशा अपने मायके वालों के निकट रही हैं, मास के चौबीस दिन वे अपने मायके वालों के साथ व्यतीत करती हैं, अपने भाई के बिजनेस में उन का हमेशा ध्यान रहता है, परिवार अपनी धुरीं पर न रहने से सब का व्यक्तित्व बिखरा-बिखरा सा लगता है।

मेरा सामान अलग कमरे में लगा दिया जाता है। नहाने के बाद नौकर काफी दे जाता है, रात भर नींद के बाद कॉफी पीकर मेरी आंखें जलने लगती हैं और मैं सफर की थकान मिटाने के लिये सो जाता हूं। मिस्टर नागपाल आफिस चले जाते हैं, अल्पना साइकिल लेकर स्कूल की राह लेती है, और प्रेरणा कालेज चल देती है। मैं नहीं चाहता हूं कि प्रेरणा आज कालेज जाने का प्रोग्राम कैंसिल कर दे। मैं उसके साथ खुल कर बातें करना चाहता हूं। मैं महसूस करता हूं कि सारे परिवार में प्रेरणा मेरे से ज्यादा निकट है। इस सामीप्य में कभी-कभी प्रेम का भ्रम भी होने लगता है। वैसे भी मुझे इस परिवार के साथ गहरी हमदर्दी है। जीवन के एकाकीपन में मैंने उन्हें अपने साथ खड़ा पाया है। माता-पिता की मुझे शक्ल तक याद नहीं। यातनाओं और संघर्षों से भरी जिंदगी में नागपाल परिवार ने मेरे जीवन के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है और कभी माता-पिता, बहन या दूसरे रिश्तों का चक्रव्यूह इन लोगों ने नहीं रचा और न ही मैं अपने आप

को इस परिवार का मित्र कहने का साहस कर सकता हूं।......मस्तिष्क में घूमते हुए इन्हीं विचारों के बीच न जाने कब सो जाता हूं।

नींद खुलने पर मुझे नौकर बताता है कि मिसेज नागपाल मुझ से मिलना चाहती हैं। औपचारिकता के बाद मुझे वे रोज की बातें बताने लगती हैं। आज मैं पहली बार मिसेज नागपाल के भीतर की ममता को पहचान पाता हूं। वह स्वयं को इस तनावभरे वातावरण में बेबस और लाचार पाती हैं—बाद में प्रेरणा के आने पर वातावरण में कुछ हल्कापन आ जाता है। प्रेरणा बहुत चुलबुली और बातूनी लड़की है। एक ही बार में वह अपने अन्दर का सारा आक्रोश निकाल देती है परन्तु परिस्थितियों की इस भूल भुलैयां में से निकलने का उसके पास भी कोई चारा नहीं। वह अपनी दीदी का दर्द बांटना चाहती है मगर दीदी में विद्रोह का साहस नहीं और न ही वह साईंस मास्टर बढ़ कर दीदी का हाथ पकड़ने के किये तैयार है।

मैं घुटन मिटाने के लिये बाहर चल देता हूं। शहर की लम्बी चौड़ी सड़कें वीरान पड़ी हैं। मार्केट से सिग्रेट का पैकेट लेकर मैं सिग्रेट सुलगाता हूं। कभी कभी कोई तेज़ रफ्तार गाड़ी मेरी विचार-शृंखला को तोड़ देती है। रिटैंडन रोड लोधी रोड से जा मिलती है। जोर बाग के गेट से जाकर मैं पार्क में बैठ जाता हूं। विवाहित एवं अविवाहित दम्पतियां अपने-अपने खेमों में बटी हुई हैं। मैं कभी कभी किसी दम्पति को देख कर झेंप सा जाता हूं और बस !

घास के मखमली कालीन पर मैं टांगें पसार कर लेट जाता हूं। इस परिवार के गोरखधन्धों को सुलझाना चाहता हूं। मुझे इस परिवार से वाकई-हमदर्दी है, सहानुभूति है। मैं दिल की गहराईयों से इस परिवार का शुभचिंतक रहा हूं। तत्काल मुझे अपने एकाकीपन का ख्याल आता है। अपने संघर्षों में उलझे हुए इस पहलू पर विचार करने का मुझे कभी समय नहीं मिला। और न ही मैंने अपने जीवन के शून्य को भरने का कभी प्रयत्न किया है। तत्काल ही मेरे मन में एक विचार आता है और अनचेष्ट ही मेरे होठों पर एक मुस्कान दौड़ जाती है। मैं एक निर्णय ले लेता हूं।

आस पास के मकानों की बत्तियां जलने लगती हैं। आज मुझे इन बत्तियों में एक नयी ज्योति नजर आ रही है। नया तेज है आज नीयान की सलाइडों में।

घर पहुंचने पर अल्पना से मुलाकात होती है, वही सकुचाहट और

सीरियसनैस उसके चेहरे से झलक रही है। उसका भाव शून्य चेहरा स्पाट सा नजर आ रहा है। मैं चाहता हूं कि उससे खुल कर बात करूं, अपने दिल का तमाम दर्द उसके सामने उन्डेल दूं मगर उस की ओर से संकेत न पाकर चुप सा रह जाता हूं।

डाइनिंग टेबुल पर सारा परिवार एक साथ बैठा है। सब अपने-अपने विचारों में खोए खाने में व्यस्त हैं। औपचारिकता के नाते कभी-कभी मिसेज नागपाल सब्जी वाला पाट मेरी ओर बढ़ा देती हैं। कभी-कभी मिस्टर नागपाल भी और खाने का अनुरोध करते हैं।

मैं और मिस्टर नागपाल डाइनिंग टेबुल पर अकेले रह जाते हैं। मिसेज नागपाल लिहाफ में दुबक कर नावल पढ़ने लगती हैं। अलपना सोने के कमरे में चली जाती है और प्रेरणा अपनी किताबों में खो जाती है।... मिस्टर नागपाल सिगार सुलगा कर मौन तोड़ते हैं और अपनी सारी समस्या मेरे सामने रख देते हैं। मैं डरते-डरते और दबे शब्दों में अपना 'माईंड' मिस्टर नागपाल पर खोलता हूं और वे भौंचक रह जाते हैं। वे सिगार सुलगा कर काफी देर तक कुछ सोचते रहते हैं....मैं इस बीच उनकी सफेद मूछों और चेहरे की लकीरों से कुछ पढ़ने की कोशिश करता हूं परन्तु मेरे सामने प्रश्न चिन्ह ही प्रश्न चिन्ह आते जाते हैं। शायद मैंने अपना माईंड देकर अच्छा नहीं किया।... आखिर उनके मस्तिष्क की रेखाएं धीमी पड़ती हैं और वे मुस्करा कर रह जाते हैं।

अगले कुछ दिनों में मेरी शादी अलपना से हो जाती है और मैं उसे सिकुड़ी सी गठड़ी की तरह अपने घर ले आता हूं। उसके दिल की किताब मुझ पर खुलने लगती है परन्तु इसके साथ ही मुझे एक खटका रहता है... प्रेरणा ने हमारे इन सम्बन्धों को पसन्द नहीं किया परन्तु घटनाओं की इस तीव्रता में वह अपने मन की बात मुझ से कह नहीं पाई। समय के साथ दोनों एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करते हैं। मेरे बार-बार बुलाने पर भी प्रेरणा मेरे पास नहीं आई। शायद वह मुझ से और अपनी दीदी से नफरत करती है।

अचानक एक दिन मिस्टर नागपाल की ट्रंक-काल मिलती है। वे बहुत घबराये हुये हैं। मुझे बुलाया है और साथ ही रहस्योदघाटन भी किया है कि प्रेरणा ने उस साईंस मास्टर से सिविल मैरिज कर ली है।



टूटा हुआ एहसास

—अलंकार

सीढ़ियां चढ़ते मुझे ऐसा लगता है जैसे पीछे से कोई खींच रहा हो। मुड़ कर देखता हूं। कोई नहीं दीखता। कोई न होने पर भी मुझे लगता रहता है कि पीछे कुछ ऐसा है जो मुझे हमेशा खींचता रहता है।

'तुम कौन हो?'

'हूं......तुम कौन हो??'

'तुम्हारा दूसरा पात्र, तुम्हारा...'

'...क्या तुम नहीं जानते, तुम्हारा पहला पात्र चित्रकार कामतानाथ हूं?'

'जिन सीढ़ियों को तुम सात साल से भी पहले छोड़ चुके हो, उन्हीं पर आज फिर क्यों चढ़ रहे हो?'

'इसलिए कि बीते सात सालों को उससे पहले के समय के साथ जोड़ सकूं।'

'उससे क्या होगा?'

'नया और पुराना एहसास...जुड़ जाएगा।'

'एहसासों में तड़प होती है, सुकून नहीं।'

'मुझे सुकून नहीं चाहिए, मैं तड़पने के बाद ही सुकून ढूंढ पाता हूं।'

तब दूसरा पात्र पहले पात्र के साथ चिपट जाता है...

दरवाजे के पास कुछ पल ठहर कर मैंने दस्तक दी। ठक्...ठक्...ठक्...

दरवाजा मुंह के जबड़ों की तरह धीरे-धीरे खुलता जाता है। एक औरत, जिसकी उम्र कहीं बीच में घूम रही थी, एक नजर में मुझे ऊपर से नीचे तक देख कर प्रश्न हवा में फैला देती है, 'कहिए आपको कौन चाहिए ?'

'मुझे मिलना किसे है, यह तो मैंने सोचा ही नहीं।'

मैं दबी सी आवाज़ में बोलता हूं।

'जी......?'

"कामतानाथ। चित्रकार कामतानाथ। मैं उनका दोस्त हूं।"

मेरे मुख से शीघ्रता से कुछ शब्द निकल जाते हैं।

'यहां तो कोई कामतानाथ नहीं रहते। यह फ्लैट मि० श्रीवास्तव का है। मैं उनकी पत्नी हूं।'

'सात-आठ साल पहले तो वह यहीं रहते थे।'

'ओह, आई सी, चित्रकार...जिसने अपनी पत्नी को खिड़की से नीचे धकेल दिया था...यू वेट फार सम टाईम, मेरे पति आते होंगे। वह आपको उनकी जानकार दे सकेंगे, यू प्लीज कम इनसाईड।'

मैं उसके साथ अन्दर पहुंच जाता हूं। कदम आस पास ऐसे बिखर रहे थे जैसे आज भी वैसे ही उन दिनों की तरह जीना है।

'सब कुछ बदला गया है।'

'सब कुछ नहीं बदला, हां कुछ तो बदल ही जाता है आप यहां बैठिए मैं अन्दर से अभी आती हूं।'

मैं दायीं ओर पड़ी एक कुर्सी में धंस जाता हूं।

.. सात साल पहले यह मेरा कमरा हुआ करता था। यहां की हर एक चीज़ मेरे आदेशानुसार चला करती थी। सामने के कोने में जहां आज रीडिंग चेयर रखी है, मैं वहां खड़े होकर घण्टों चित्र बनाया करता था। रंगों के निशान अभी तक ज़मीन पर अपनी जगह को सम्भालने के प्रयत्न में हैं। यहीं मेरे बिल्कुल सामने की कुर्सी पर सुवीरा घण्टों माडल बनकर बैठी रहती थी...

'सुना था कामतानाथ बहुत अच्छा चित्रकार था। हमेशा एक ही

तस्वीर को अलग-अलग कोनों से कागज़ों पर उतारा करता था।' उसने अन्दर आते ही यह कहने के साथ ही अंगुली मेरी पीठ की तरफ, ऊपर कर दी, 'उसके जाने के बाद यह तस्वीर हमने वहीं की वहीं टंगी रहने दी है। इसलिए कि कभी वह आए तो उसे इतना तो लगे कि कुछ तो है जो अभी भी यहां अपना लग सकता है।'

'सु...वी...रा...'

'हां, यही नाम था उसका। आप उसे जानते थे?'

'अच्छी तरह से, मैं यहां अक्सर आया करता था।'

'कहते हैं वह बहुत खूबसूरत थी। पर ज़रा सी मोटी थी। चित्र देख कर मैं उसके बारे में कोई राय नहीं बना पाई।'

'वह सुवीरा से प्रेम करता था, उसके शरीर से नहीं।'

'तो उसने उसकी जान क्यों ले ली?'

'क्योंकि वह माडल नहीं, कुछ और बन कर चित्रकार के साथ रहना चाहती थी।......और वह उसके साथ नहीं उसकी तस्वीरों के साथ अधिक रहना चाहता था।'

'उसकी तस्वीरें तो यहीं रहीं पर वह न रही। खैर, मैं अभी चाय लेकर आती हूं।'

उसकी तस्वीरें यहीं रहीं पर वह न रही। कितनी छोटी सी बात में बात समाप्त हो गई। पर, पर......मैंने तो ऐसा कभी नहीं चाहा था। मैं तो कुछ और ही चाहता था, उसने कुछ और ही किया और मुझ से कुछ और ही हो गया।

तभी वह सामने से आकर सामने की कुर्सी पर बैठते हुए चाय की ट्रे मेज़ पर रख देती है।

दिमाग में खटाक सा होता है। वह उसी स्थान पर बैठी, उसी ढंग से, चाय बनाने लगी है जैसे सुवीरा बनाया करती थी। चाय बनाने का सुवीरा का एक अपना ही ढंग था।

'किसी को चाहना भी एक सीमा तक ही चाहिए...'

'चाहने की कोई सीमा नहीं होती। रास्ते अपने-आप बनते जाते हैं खुलते जाते हैं।' वह इस बात पर जोर से ठहाका लगाते हुए कहती है।

'लगता है आपका दोस्त भी इन्हीं रास्तों से गुजरता रहा है।'

'वास्तविकता में नहीं तो कल्पना में तो अवश्य ही गुजरता रहा होगा।'

'कल्पना मत किया कीजिए। ऐसे लोग वास्तविकता आने पर बुरी तरह घायल होते हैं। क्योंकि कल्पना जमीन के ऊपर होती है और वास्तविकता जमीन के नीचे। ऐसे लोग दोनों ओर की लड़ाई में बुरी तरह से हारते हैं। आपके दोस्त का भी मेरे विचार में यही हाल था।'

बात करते हुए वह होंठ भी बिल्कुल वैसे ही हिलाती है जैसे सुवीरा...

'चाय लीजिए।' वह फिर उसी के ढंग से चाय का प्याला मेरे हाथ में थमा कर मुस्करा देती है।

'हो सकता है, मैंने कभी इस बात पर सोचा नहीं।'

उसकी हर हरकत मुझे अस्थिर बनाने के लिए काफी थी।

'आप के साथ बात करते हुए मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं आप से नहीं सुवीरा से बात कर रहा हूं।'

मैं बोल ही पड़ता हूं।

'हो सकता है परन्तु मैं वैसा बनना कभी भी पसंद नहीं करूंगी।'

'क्यों? वह एक चित्रकार की प्रेमिका थी जिसे वह बहुत... किया करता था।'

'मैं शारीरिक प्रेम में विश्वास करती हूं, भावनात्मक प्रेम में नहीं। भावनात्मक प्रेम एक लम्बे समय तक रहता है और मैं उस किसी भी चीज को पसन्द नहीं करती जो लम्बे समय तक जी का जंजाल बनी रहती है। मैं पुराना उतार कर नया पहनने की कोशिश में रहती हूं और तब तक उस से दूर रहती हूं जब तक पुराना फिर से नया न बन जाए।'

इसके पश्चात कुछ पलों की चुप्पी चाय में घुलने लगती है।

'आप एक अजनबी के साथ ऐसी बात कर सकती हैं, यह मुझे बहुत अच्छा लगा।'

'हर किसी के साथ मैं ऐसा नहीं कर सकती।'

'फिर मेरे साथ ही ऐसा क्यों ?'

'क्योंकि आप उस चित्रकार के दोस्त हैं, जिसके बारे में सोचना, बात करना हमारी रुटीन में मिल गया है और जब दो इन्सान दो विचारधाराओं से निकलकर एक विचारधारा में आ मिलें तो वह सब कुछ कह डालते हैं जितना कहने की वह क्षमता रखते हैं। मैं इनके बारे में इतना क्यों सोचती हूं, यह मैं नहीं जानती और न ही जानने में मेरी कोई दिलचस्पी है।'

'सुवीरा भी बात करती थी, सोचती थी पर बातों में दिलचस्पी नहीं लिया करती थी। एक रात......इसी बात पर मैंने उसे बहुत पीटा था।'

'आपने......?'

'...नहीं, मैंने नहीं नाथ ने।'

'पर आपने कैसे जाना ?'

'मैं उसके बारे में उतना ही जानता हूं जितना कि कोई भी किसी के विषय में जान सकता है।......लेकिन मुझे आपके हाव-भाव देखकर बार-बार कहना पड़ रहा है कि आप सुवीरा से बहुत मिलती- जुलती हैं।'

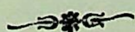
'समझ लीजिए कि मैं सुवीरा ही हूं। मुझ से आप वैसे ही बात कीजिए जैसे कि आप उससे करते थे।'

'मैं सुवीरा से बात नहीं करता, मैं सुवीरा से ...'

फुर्ती... ...और मैं कुर्सी से उठकर फुर्ती से आगे बढ़कर उसे गले से लगा लेता हूं......

तड़ाक...तड़ाक...यू...ब्लडी...तड़ाक...रास्कल, गैट आऊट फ्राम हियर इमिजीएटली अदरवाईज ..अदरवाईज...

उसकी हांपती हुई आवाज मुझे संज्ञाहीन बना देती है और मैं तेजी से सीढ़ियां उतरने लगता हूं। सीढ़ियां उतरते हुए यह एहसास मुझे दबोचे जा रहा है कि वह दूसरा आदमी मुझे पीछे से धक्का देने ही वाला है और मैं अभी गिरा कि गिरा......



सूनी पगडंडियों के साये में

—संतोष कौल

फिर वही पगडण्डी, वही लम्बे-लम्बे धान के खेत, वही झरना, वही फूल, वही सध्या, कुछ भी तो नहीं बदला इतने सालों में। ओह! मैं फिर उलझा जा रहा हूं उन विशाल नेत्रों में! कितनो सुन्दर थी वह! संगमरमर जैसी देहयष्टि! आज जब मैं अपाहिजों की वीरान जिन्दगी गुजार रहा हूं, मुझे क्यों बार-बार याद आती है उसकी। मैं आज क्यों उसे अपनाना चाहता हूं। अपने सुख-दुख का साथी! वह सुन्दरता की अलौकिक आकृति मेरा सानिध्य चाहेगी भी...नहीं...कभी नहीं! उसे सहन न होगी मेरी यह बेडौल सी सूरत, और अपाहिज शरीर का यह बोझ! उसे मुझ से स्नेह जो है! क्या वह इतना भी सहन नहीं करेगी! फिर उसका प्यार ही किस काम का ?. मैं अब भी चाहूं तो अवश्य ही उसे अपना सकता हूं! पर! क्या वह यह सब मान लेती। मैं!......मैं कितना स्वार्थी हूं। जब उसने सम्पर्क करना चाहा तो मैंने स्वीकार नहीं किया उसे......क्यों......क्योंकि उस सुन्दरता की मूरत में एक कमी लगी थी मुझे......और आज जब मुझ में इतनी सारी कमियां हैं तो......तो......क्या वह मेरी ओर देखना भी पसन्द करेगी? नहीं! कभी नहीं।

तब से इतने वर्ष हो चले हैं!...मैं बूढ़ा हो गया हूं! मेरे में और मेरी शक्ल में कितना फर्क आया है। शायद अब वह पहचानेगी भी नहीं।

हे परमात्मा! आज कितना एकाकी हूं मैं! न मेरी लाश को रोने वाला कोई है न कोसने वाला! हूं! हूं! कितन अभिमान था मुझे अपने यौवन पर!...अपवे पद पर! सोचता था आसमान के तारे तोड़ के

रख दूंगा ! पर ! दर्द किसी को जीने नहीं देता !......उस ऐक्सीडेन्ट के बाद सब कुछ मिट्टी में मिल गया।" न अयाज की जुलफें ही रहीं और न गजनवी की तड़प ही ! हूं ! हूं ! न जाने क्यों और किस लिए मैं जिन्दा हूं !......मेरे बच्चे नहीं, पत्नी नहीं और न अपनी कोई दुनिया ही है। मेरा सारा जीवन घड़ी की निर्विकार टिक टिक और कैलेन्डर के स्वतः चक्कर की तरह बीत गया ! बेमतलब और बेमुरौवत सा। कोई इच्छा नहीं ! कोई अभिलाषा नहीं ! बस जी रहा हूं क्योंकि सांस चल रही है। ओह ! मैं कितना असहाय हो गया हूं। शायद अपना भविष्य गिरवी रखने वालों की हालत यही होती होगी ! कितना असहाय होता है यह मानव भी इस संसार में आकर, विशेषकर जब दम्भी पुरुष दिल से नहीं दिमाग से फैसला कर लेते हैं। और वह फैसला कभी-कभी आतंक की धुंध बनकर सारे जीवन को ढंक देता है। जहां से अपनी आकृति का आभास भी सम्भव हो जाता है। और इसी तरह मनुष्य बिखर जाता है; कई-कई दुखों, कष्टों और परेशानियों में ! इस नष्ट हुई स्थिति को क्या कोई फिर से सहेज सकता है ? नहीं ! कभी नहीं ! क्योंकि नष्ट हुए का कभी निर्माण नहीं होता।........ उस झरने पर जहां उन किनारों के झुरमुट में एक सुन्दर पण्डाल सा बना है। उन दिनों उसकी उपस्थिति से कितनी सुन्दर लगती थी वह जगह। उस विशाल पत्थर पर बैठी जब वह छल-छल बहते पानी में दोनों सफेद-सफेद पैर डाल घण्टों बैठी रहती ! कितनी भली लगती थी वह ? और तब उसके आकर्षण में मैं भी आगे पीछे पतंगे की तरह घूमा करता ! काश ! वह दिन फिर लौट आते ! मैं उस से अपने व्यर्थ के दर्द के लिये क्षमा मांग लेता।

आज मैं उसको फिर से देखने की लालसा में प्रतिदिन यहां आकर घण्टों बिताता हूं। पर ! वह पत्थर हृदय कहीं भी तो प्रकट नहीं होती। कितना विकट प्रतिशोध लिया विधाता ने। यदि मैं उसक पवित्र प्रेम को ठुकराता नहीं तो शायद मुझे भी यह दिन न देखने पड़ते। अब इस दुख का एक ही तो साथी बना मेरी यह बांसुरी ! आह ! यह न होती तो न जाने मैंने कब का दम तोड़ दिया होता।......वही विशाल सी दो काली-काली आंखें......जैसे मेरी आस्था का सम्पूर्ण विश्व इन्हीं दो बिन्दुओं में समा गया है। हर समय मुझे उसकी आंखें घूरती दिखाई दे रही हैं। लगता है मुझ से कह रही हैं, "संकुचित भावनाओं का घेरा भी बड़ा संकुचित होता

है। दबाव में कसा हुआ और घुटन व उदासियों से भरा हुआ !" मैं सब कुछ समझ कर भी समझ नहीं पा रहा तभी उस का अव्यक्त अट्टहास इन सूनी पगडंडियों को अलंकृत करता है। और ! और मैं कांप उठता हूं। मेरे इस कम्पन का मज़ा ले लेकर वह कहती है। दुनिया इतनी सी नहीं है पगले ! और न स्वर्ग नरक ही अलग-अलग है ! तुम ने जीवन की अज्ञात गति को वश में करना चाहा था न, अब देख लो जीवन ने विपरीत दिशा से आकर तुम पर धावा बोला है, और उसकी यह आवाज़ सामने फैले चिनारों से टकरा कर झरने से झर-झर कर इन ऊची-नीची पहाड़ियों की इन सूनी संकरी पगडंडियों में न जाने कहां विलीन हो जाती है, तब विवश सा बांसुरी उठा कर स्वर भरने लगता हूं ! जो स्वर मेरे ही ऊपर अपने अन्दर के झंझावात का झोंका मात्र होते हैं।

आज फिर आई है यह ग्राम कन्या मेरी बांसुरी के स्वर सुनने और मैं कितना आनन्दित हो रहा हूं। क्यों ? क्योंकि मुझे इस में अपनी वनदेवि, जो भी उसका नाम रहा हो, का ही प्रतिरूप दिखाई देता है। इसको बांसुरी सुना कर मुझे एक अजीब तरह का आह्लाद अनुभव होता है। बराबर उस बच्चे की तरह जिसे मां वस्तु छीन कर हाथ में खिलौना दे बहलाती है। ओह ! क्या रिस्ते नासूर पर मरहम असर करता है ? नहीं ! कभी नहीं। पर ! फिर भी आशा का पल्ला छोड़ा तो नहीं जा सकता।

मैंने बांसुरी बजाना बन्द कर दिया और वह ग्राम कन्या अपने मैले-कुचैले पल्लू को समेटे वहीं ठिटक के खड़ी हो गई। क्यों ? शायद इसे मेरा यह व्यवहार अच्छा न लगा हो ! मनुष्य कितना स्वार्थी होता है, चाहे किसी का घर जले या कोई मरे ! पर ! सब को अपने स्वार्थ से मतलब है। यह धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई मेरे पास ही आ रही है शायद ! और कुछ कहना भी चाहती है ! देखूं।

"बाबा रोज़ इधर आकर क्या देखते हो ?"

"कुछ नहीं लड़की, यहां आकर थोड़ा सुस्ता लेता हूं !"

"मुझे तुम्हारी मुरली अच्छी लगती है !"

"तुम सुनोगी ?"

"हां" उसकी इस संक्षिप्त सी "हां" को सुनकर बजाना आरम्भ कर दिया मैंने। और वह अपने मृगनयन इधर उधर घुमाती सी सुनती रही। कुछ देर बाद न जाने मैं क्यों रुक गया और वह पूछने लगी— 'बाबा ! तुम्हारे बाद्य में बड़ा दर्द सा लगता है। ऐसा क्यों ?"

उसके इस भोले से प्रश्न पर मेरी आखों के दोनों कोरों पर आंसू आये और फिर वहीं समा भी गये। उन्हें गौर से देखकर वह बोली, "तुम्हें अवश्य ही कोई दुःख है! बोलो ना बाबा!"

"इस दुनिया में कोई किसी की सुनना नहीं चाहता क्योंकि सभी के जीवन अफसाने बने हैं! नादान लड़की तुम्हें क्या मिलेगा सुनकर! भूल जा! बांसुरी सुनेगी!"

"नहीं बाबा! बांसुरी रहने दो! अपना गम कह दो तो जी हल्का हो जायेगा।"

"सच कहा तुमने! जी हल्का करने से कितनी मुक्ति मिलती है? तभी तो आदमी अपनी सुनाना चाहता है और दूसरों की सुनना चाहता है। नहीं तो दर्द थोड़े ही बांटे जाते हैं! लड़की, मेरी कहानी सुनकर शायद तुम मुझसे नफरत करने लगो! पर! मैं तुम्हें सुनाऊंगा जरूर!"

"नफरत कैसी? तुम सुनाओ तो सही!"

"लो सुनो"—

इन्हीं सूनी पगडण्डियों के साये में, इन्हीं किनारों की साक्षी में धान के लम्बे-लम्बे लहलहाते खेतों की मुस्कान जैसी वह मुझे मिली थी। वह प्रतिदिन इसी पत्थर पर घण्टों बैठा करती थी। उसका प्रतिबिम्ब पानी में इतना सुन्दर और सजीव लगता, कि अपने आपको जैसे भूलकर मैं खो जाया करता! बड़ी सुन्दर थी वह! घने बादलों जैसे केशों से लिपटा हुआ उसका संगमरमर की तरह सफेद गोल-गोल सा मुख किसी भी कलाकृति से कम न लगता, वह अपनी विशेष मोहिनी चाल से चलती हुई किनारे के पत्रों को अपनी टोकरी में जमा करती! और मैं खोया खोया सा केवल उसी को देखा करता।

बहुत देर तक ऐसा होता रहा! मेरा भी यहां सांझ बिताना नित्य प्रति का नियम सा बन गया, और वह भी मेरी इस आसक्ति से परिचित हो गई। जब भी मैं उसे निहारने लगता तो वह मुस्करा भर देती! और जब मैं उसके सामने आने की कोशिश करता तो वह एक दम ही भाग जाती। कई बार ऐसा हुआ पर कभी भी वह मेरे हाथ न लगी। कई-कई बार मैंने उस पर फूल बरसाये जिनको वह अंजलि भर-भर कर अपने "फिरन" में जमा करती, सूंघती और प्यार करती! पर! जब मैं प्यार चाहता तो वह भाग जाती। उसके इस तरह भागने से मुझे सदा यही लगता कि शायद यह मुझे चिढ़ाना चाहती है। या अपने कौतुक के लिये नहीं बोलती।

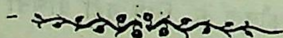
एक दिन मैंने निश्चय किया कि अब उसको हराऊंगा अवश्य! अपने डेरे से निकल कर जब मैं इस झरने पर आया तो उसे सामने वाली पगडण्डी के मोड़ पर पत्ते उठाते देखा मैंने। मैं धीरे-धीरे उसके पीछे आया और एकदम से उसकी आंखें मूंद लीं! वह छूटने का प्रयास करने लगी! पर! मुंह से बोली कुछ भी नहीं। मैंने उसको अपनी बाहों में भर लिया! पर! कुछ देर बाद वह मछली की तरह फिसल कर अलग हो गई! मैंने उसे पुनः पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। इस बार वह भागी नहीं बल्कि भयभीत हिरनी की तरह टुकुर-टुकुर देखने लगी। उसके माथे पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे! जिन्हें मैंने अपने रूमाल से पोंछ दिया और उसके कन्धों पर अपने दोनों हाथ रख कर कहने लगा, "देखो तुम क्यों नहीं बोलती हो मेरे साथ?" वह कुछ न बोली! मैंने फिर कहा, "मैं बुरा आदमी नहीं हूं।" इस पर उसने एक भरपूर दृष्टि मुझ पर डाली। मैंने देखा उन आंखों में इन वीरान पगडंडियों की सारी वीरानी भर आई थी! मैं सहम सा गया। मैंने उसके कन्धे झकझोर कर कहा, 'तुम आखिर बोलती क्यों नहीं! आज बुला के ही छोड़ूंगा। समझी!"

इस पर उसकी आंखों में कटने वाली भेड़ की सी बेबसी छा गई। थोड़ी देर झरने के पानी की ओर देखने के उपरान्त उसने मेरी ओर दृष्टि उठाई, बेझिझक सी! मेंने देखा उसकी आंखों के मोती उसके सेब जैसे गालों पर से लुढ़कते हुए उसके लाल फिरन में समा गये! उसने उन्हें पोंछने की कोई कोशिश नहीं की। कुछ देर बाद वह जाने को मुड़ी पर! मैंने रास्ता रोक लिया और अपनी हठ दोहराई, "मैं तुम्हें बिना बोले जाने न दूंगा।"

इस पर उसने विवश हो अपना मुंह खोला और दिखाया। मैं......मैं अवाक् रह गया। उसके सुन्दर से मुंह में जीभ न थी। मेरी आंखों के सामने से इन्द्रजाल हट गया! मुझे उससे भय हो आया। और मैं एकदम वहां से पूरी शक्ति लगाकर भाग खड़ा हुआ।"

"कहां?."

"अपने शहर। वर्षों बाद एक घटना में मेरे दोनों पैर अशक्त हो गए और एक बाजू कट गया। बहुत देर इलाज होता रहा। पर! ठीक न हुआ! अब मैं समझता हूं कि आहत होना कितना कठिन और असह्य है। काश! वह मिलती तो उससे क्षमा मांग सकता।"



काव्य मंजरी



संदर्भों के अन्तर्विरोध में

—डा० अयूब 'प्रेमी'

जिंदगी के कई पृष्ठ पढ़ने हैं
लेकिन हिलती हुई दियाबाती के प्रकाश में
पिछवाड़े की परछाइयां हिलडुल जाती हैं।
आज का जीवन संदर्भों के विरोध में
बहुरूपिया का अभिनय करता है—
कभी अपना लगता है, कभी सपना सा
और कभी अजनबी सा।
बड़े जतन से ओढ़ी खामोशी की चादर को
एक दर्द भरा अनगाया गीत
चर्र से चीर देता है—
थोड़ी देर के लिए वातावरण की
धड़कनें सुनाई देती हैं।
कभी पैर छोटा और जूता बड़ा है
कभी जूता छोटा और पैर बड़ा है
कभी-कभी खिड़कियों से प्रक्षेपित
रोशनी के खंड बाहर झुकने लगते हैं—
संदर्भों के अन्तर्विरोध में
कभी वर्तमान दोनों हाथों से
कोट का कालर थाम कर
संत्रस्त भागने लगता है—
टाई दमसाधे
कमीज़ से चिपक जाती है।



गजल

—मनसा राम शर्मा 'चंचल'

कुछ लोग यहां इस धरती पर आकाश बनाए बैठे हैं,
इक ध्वस्त त्रस्त सी मानवता के स्वप्न सजाए बैठे हैं।

इक आग लगी है इस घर में घृणा फूट औ' हिंसा की,
इस सुन्दर दीप शिखा से भीषण आग लगाए बैठे हैं।

चाहत है इक बार पुनः घनघोर घटाएं घिर आएं,
इन सुन्दर भवनों के गिरने की आस लगाए बैठे हैं।

वे चाहें दुनिया मिट जाए औ' चीत्कार हो धरती पर,
इस नाशक भीषण रौरव के ये साज सजाए बैठे हैं।

स्वाधीन देश के वक्षस' पर क्यों आज विदेशी साए हैं,
ये आज गुलामी की देहरी पर दीप जलाए बैठे हैं।



निर्णय तुम्हें ही करना है

—दुर्गा दत्त शास्त्री

लीक पर चलना है
या लीक से हट कर चलना है
निर्णय तो तुम्हें ही करना है
पर इतना तो स्पष्ट है ज्ञात तुम्हें कि चलना है

प्रश्न यह भी है कि जिस पर
चलोगे उसे क्या कहोगे ?
हां लीकें बहुत हैं
नयी पुरानी मिली जुली
देशी विदेशी अनगिनत हैं
नाना तंत्रों वादों से बंधी
कुछ प्रगतिशील
कुछ प्रतिक्रियावादी
लेकिन सब की सब
राजनीति के धुरंधरों द्वारा विनिर्मित हैं
और राजनीतिज्ञ जिन का अपना दम खम
कुछ नहीं सब के सब भोंपू
जो इरशाद हुआ बजाने लगे
सत्ता के पथ के गीत गाने लगे
बेचारे जन साधारण को

नचाने लगे।
हां इन खिलाड़ियों की
लीकों से अलग भी एक लीक है
अपनी मिट्टी की लीक
अपनी संस्कृति की लीक
अपनी कला की लीक
समाज के ठेकेदारों की नहीं
जन साधारण की लीक
तुलसी कबीर निराला—
प्रेमचन्द की लीक

इस पर चल सको तो चलो
अपने को, अपनी कलम को
अपने कवित्व को सार्थक करो
यदि नहीं तुम्हें इस बोगस
बोसीदा लीक पर (जिसे-
नवयुग के बुद्धिजीवी प्राय:
पूंजीवादी और प्रतिक्रियावादी
मानते हैं) चलना
और समाज में
नया पन लाना है
नया पथ सजाना है
तो ठीक है प्रयत्न करो
अवश्य करो
मैं तुम्हारी सफलता की
कामना करता हूं—
लेकिन इतनी बात भी कहे देता हूं
यह लीक यह नयेपन का भूत
तुम्हें जोखिम में डाल देगा
क्या तुम जोखिम उठा सकोगे ?

मुझे सन्देह है
क्योंकि नयी पुरानी लीकों के कौरवों ने
ऐसा चक्र व्यूह रचा है
जो पुराने चक्रव्यूह से भी भयंकर है
तुम अभिमन्यु की तरह
जोखिम उठा सकोगे
मुझे सन्देह है
और अंततः तुम
नयी पुरानी लीक में ही
लीन हो जाओगे
सो मैंने अपनी बात कह दी
अब लीक पर चलना है
या लीक से हटकर
इस का निर्णय तो
तुम्हें ही करना है



प्रश्नों के प्रश्न

—सुभाष भारद्वाज

शब्द ये
बहुत सिर पटकने पर भी
अपने मुख से
कुछ नहीं बोलते
मेरे बहुत बतियाने पर भी
अपनी इस चुप्पी का
रहस्य नहीं खोलते।
बैठ कर
मेरे प्रश्नों की सड़क पर
बस थूकते रहते हैं
हर क्षण
अपने अपने प्रश्न।

आज मैंने
कुछ शब्दों को
पकड़ लिया
और चाय की दुकान पर
पिला कर चाय
चाय-पाश में जकड़ लिया;
और फिर उनके सम्मुख
मेज़ पर

फैंक दिये ढेर सारे प्रश्न ।
पर वे मेरे
सब के सब प्रश्नों को
पी गये चाय में घोल कर
दिया नहीं
मेरे
एक भी प्रश्न का उत्तर
मुंह खोल कर ।
किन्तु कुछ देर बाद
सहसा
शायद कुछ झेंप कर
अपनी निरुत्तरता से
फैंक कर
मेरे प्रश्नों के मुंह पर
अपना यह
मरियल सा उत्तर
चले गये
चाय की दुकान से बाहिर—

"हम शब्द
अब कुछ भी नहीं बोल सकते हैं
क्योंकि हमारा पाणिनि
किसी बार में
बहुत पीकर
बेहोश हो गया है ।
और इस बीच
कुछ ढोंगी और पाखण्डी
वैय्याकरणी
नोच कर ले गये हैं
हमारे उपसर्ग और प्रत्यय,
छीन कर ले गये हैं

हमारे सर्वनाम और विशेषण
और हमारी क्रियाओं का
कर गये हैं
समूल नाश।
अतः
हमारे मूर्च्छित पाणिनि के
होशने तक
उपसर्ग और प्रत्यय रहित,
विशेषण और सर्वनाम हीन,
क्रिया-विहीन
अपाहिज और गिराहीन
हम शब्दों को
बन
तुम्हारे प्रश्नों के प्रश्न
एक एक करके नष्ट होना है
और अपना यह
पंगु शब्दत्व
अब इसी तरह खोना है।"



रोगग्रस्त घोड़ा

—निर्मल विनोदी

पोस्टर–युद्धों के चारे पर निर्भर
व्यक्तित्वों के
अस्तित्व का ऋणी
घोड़ा
तरस रहा––दुलकी चाल के लिये
लंगड़ाती टांगों का गिजगिजा नंगापन
बन गया है—
शर्म का बायस
घिसे-पिटे
खस्ता नेल्ज़ ने—
पैरों में—
दर्द की बेड़ियां दीं डाल
रुद्ध होकर रह गयी है चाल
वास्तविक सब योद्धा
बिना ढाल
बिना तलवार

'स्ट्रेट्जी' का खोखलापन सिसक रहा—
बेबस
लाचार
कैफे'ज़ की
डिस्टेंपर–पुती दीवारों के घेरे में
कैद पड़ा बहसों का शोर; घिरा हुआ—
धुएं में
घुटता—
बौद्धिक व्यापार !



कश्मीर में बसन्त

—जानकीनाथ कौल 'कमल'

कोयल की यह धूम कहां से,
क्या बसन्त आया है आज !
चल सखि ! अलिदल के स्वागत को
निकलें सज कर अपने साज ।

पुष्प लताओं से वन-कुंजें,
क्या पराग यह भेज रहीं ।
जो न्योता देती फिरती हैं,
प्रकृति के आंगन में आज ?

वृक्ष विटप जर्जरित खड़े थे,
कल ही लीन तपस्या में ।
क्या उन के तप सफल हुए जो
रंग नये भरते हैं आज ?

धरणी दारुण रूप छोड़ यूं,
दर पे अपना बाल निरख ।
जीवन-धन को पाकर सज-धज
हरियावल में आई आज ।

लाल पीत औ' नील श्वेत यह,
रत्न-जड़ित भूषण पहने ।
लक्ष्मी भू-अवतरित हुई है,
सम्पत्ति-सुमन सजाने आज ।

आंगन यह कश्मीर प्रकृति का,
सुन्दर सुमन विहग-पक्षी का ।
प्रफुल्लित जन-मन, जड़-चेतन यह,
तन्त्रित जन - तन्त्र में आज ।

कृषकों की इस कर्मभूमि में,
स्पन्दन मन्थन होते आज ।
बीजारोपन करने में भी,
प्रकृति हाथ बढ़ाती आज ।



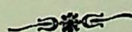
कविता

—शंकर शर्मा 'पिपासु'

अपने आप जला करता हूं।
अपना आप छला करता हूं।
भव दुख दूर नहीं कर सकता,
भव सुख अधिक नहीं कर सकता,
विष को सुधा नहीं कर सकता,
केवल लोचन ही भर सकता।
फिर भी हाय खला करता हूं
अपने आप जला करता हूं।

तृष्णा की ज्वाल बढ़ी सत्वर,
तृष्णा पूजा में जग तत्पर,
जल गया आज मैं निरख निरख,
जाज्वल्यमान मेरा अन्तर।
खा अंगार पला करता हूं।
अपने आप जला करता हूं।

मैंने जग को उल्लास दिया,
जग ने मेरा उपहास किया,
कोरा भ्रम था विश्वास किया,
फिर कब सुख का निश्वास लिया।
अब अरमान दला करता हूं।
अपने आप जला करता हूं।



रोशनी के द्वार

—उषा व्यास 'छवि'

विश्वास के ज्योति-स्तम्भ

ढह गये

संवेदनाएं हो रही हैं खण्डहर—
ग्रौर उन खण्डहरों के बीच
उग ग्राये हैं घने कैक्टस झाड़
भीमकाय चट्टानें, बरगद के पेड़
ताकते हैं ग्रांखें फाड़
टूटे हुए झरोखों से लौटते हैं
गिलबिलाते, फूत्कार करते सांप
गूंजती हैं चीखें—उड़ती है धूल
जिस्म कोंचने को तैयार
मुंह खोले हुए हैं शूल
विभीषिकाग्रों के ताण्डव में
मुट्ठी भर निर्व्याजता के लिये
कहां लड़खड़ाते भटकते हैं तुम्हारे पांव
मसीहा !
लौट ग्राग्रो
बीमार-खांसते ग्रंधेरे की छाती का
रिसने लगा है नासूर

किरणों के तुरपन दिए होठों की
अबोली बात कौन कहे
काट डालो
धैर्य के हाथ
कहां देते फिरते हो सौजन्य की दस्तकें
कि रोशनी के द्वार नहीं रहे ।

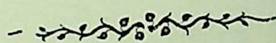


एक झोंका हवा के लिए

—पृथ्वीनाथ मधुप

वर्फीले शिखरों की
ऊंचाइयों से आई
अनेक झरनों, झीलों जलाशयों के
कल-कल छल-छल
लघूर्मियों की निर्मलताओं में नहाई
वादाम-बौर—
केसर-कमल-किंजल्क-गन्धित
चिनार के हाथों संवरी
शंख-घंटा ध्वनियों—
आयतों—ऋचाओं से पूत
प्राणदा प्रात-वायु के लिए
पूरी खिड़की खोली
मैंने।
फैला पर्दा
समेट कर एक ओर दिया सरका
वैठा पाने को राहत
खिड़की के चौखट के इस ओर।
उस ओर
चौकोर टुकड़े पर
आकाश के—
अपने

कुंकम के बदले
विषाक्त चिमनी-धूम्र-दैत्य द्वारा
पीन पर्त कालिख की
पुती पाई !!
कमरा
उमस से भर गया
(पहले से बहुत ही ज़यादा)
तीव्र दुर्गन्ध से हुई मिचली
खुरखुरी आवाज़ें
कुन्द दांतों वाली आरियों सी लगीं चलने।
कट गया
टुकड़ों टुकड़ों में
बिखर गया
मैं।
उबलते कोलतारी अन्धकार के देश
धधक रहे
रेंग रहे
नस नस में !!!
अटक गई है सांस
छटपटाते हैं प्राण
टीसती है आत्मा :
एक झोंका हवा के लिए।



परिचय

—बलनील देवम्

व्यथाओं के घेरे में हम
चीखते चिल्लाते से
कभी हंस पड़ते हैं अपने आप पर—
वक्ष तान कर खड़े होते हुये भी
दब्बू से दिखने लगते हैं—
और कभी
नभ की ऊंचाईयों को
थामते-थामते
नीचे धंस जाते हैं—
इगित की ओर बढ़ते पाद
विरोधी दिशा को
भागते हैं—
फिर भी
'मैं-मैं-मैं' का शोर
वायुमंडल में
तैरता रहता है।



रंग नाटक

※

पात्र

पहला सदस्य
दूसरा सदस्य
तीसरा सदस्य
चौथा सदस्य
वृद्ध पुरुष
समाचार पत्र-पाठक
किताबी
खान
भिक्षुणी

सांझे मंच पर

—सुतीक्ष्ण कुमार 'ग्रानन्दम'

एक भव्य प्रासाद। सामने वाली दीवार पर क्लॉक लटक रहा है जिस के नीचे पुस्तकों की एक ग्रथवा दो ग्रलमारियां या रैक सटा रखा है। एक ग्रोर समाचार-पत्र-पठन स्टैंड है जिस के ऊपर पड़ा समाचार-पत्र एक ग्रोर लटका हुग्रा दिखाई दे रहा है। ग्रावश्यकतानुसार कुछ मेज़ तथा कुर्सियां करीने से लगाई गई हैं। दाएं-बाएं प्रवेश द्वार हैं। बाएं प्रवेश द्वार के साथ ही खड़ा हो सकने में ग्रसमर्थ तीन टांग का स्टूल रखा है।

पर्दा उठता है। ग्रंधकारमय मंच दिखाई देता है— इसके साथ ही निराशा का प्रतीक संगीत उभरने लगता है जिसके साथ ही साथ धीमा-धीमा प्रकाश फैलना ग्रारम्भ होता है। पृष्ठ भूमि में एक वृद्ध पुरुष का टीस भरा स्वर गूंजने लगता है।

वृद्ध पुरुष — हज़ारों वर्ष बीत चुके। हां, ग्राज से हज़ारों वर्ष पूर्व मैंने इस क्लब का सयोजन किया था। मेरा सपना रहा......यह क्लब......क्लब न होकर......एक ग्रादर्श परिवार बनेगा। इसके सदस्य......एक परिवार के सदस्य कहलायेंगे। किन्तु ......किन्तु इन हज़ारों वर्षों में......कभी मेरा यह सपना साकार हो पाया ? मुझे स्मरण नहीं है......याद नहीं है।——

देने को इस क्लब को मैंने क्या नहीं दिया ? हां......क्या नहीं दिया ? व्यक्ति दिये......धर्म दिया......ज्ञान दिया......अर्थ दान दिया......व्यवस्था-सम्पन्नता दी। मैंने इसे सर्वस्व दिया। जो शेष रहा वह भी इसे देने का निरन्तर यत्न किया मैंने। हां—मैंने वह भी इसे दे दिया।......परन्तु......परन्तु इतना सब होते हुए......इतना सब प्राप्त करके भी......यह विचित्र-सा जीवन जी रहा है। क्या यही मेरा सपना था ? क्या यही था ? यही था क्या मेरा सपना ? मे . रा...सप...ना ?

[समस्त मंच पर पूर्ण प्रकाश फैल जाता है। झकझोरती संगीत ध्वनी गूंजती है जो कुछ क्षण पश्चात सन्नाटे की ओर अग्रसर हो जाती है। कुछ क्षणों बाद मौन को भंग करती एक आवाज़]

पहला सदस्य—[प्रवेश करके चारों ओर देखते हुए] अभी यहां कोई नहीं आया ? कोई भी नहीं ? [कलाई घड़ी पर समय देखता है] ओह अभी पांच मिनट शेष हैं ! [मेज़ों की ओर देखता हुआ] कैरम बोर्ड ? चैस ? ओ ऽ ऽ प्लेइंग कार्डस ? लूडो ?.. गुड ! लूडो ! मैं लूडो का खिलाड़ी हूं। [चल कर लूडो की मेज़ सम्भालता है] कोई न कोई साथी अवश्य आ रहा होगा जो मेरे साथ खेलेगा। [तनिक सोचता है फिर बेरा को पुकारता है] खान ?...खान ?...अबे खान ?

खान —[दूसरे कमरे से आता है] हाजिर हुआ शाब ! [समीप आ कर] क्या हुकम है शाब ?

पहला —एक काफी लाओ ! एस्प्रेसो !

खान —अभी लाता शाब ! [प्रस्थान]

[पहला लूडो को देखता और टटोलता रहता है–मुस्काता है]

खान —[काफी लेकर प्रवेश] लीजिये शाब ! [मेज़ पर रख कर] और कुछ लाऊं शाब ?

पहला —नहीं, और कुछ नहीं चाहिये !

खान —सलाम शाब...[कहता कहता रुक जाता है, मुस्काता है, और प्रस्थान करता है]

[पहला काफी के घूंट भरने लगता है]

दूसरा सदस्य—[सीटी बजाते और कमीज़ का कालर ठीक करते हुए प्रवेश] ठीक ! ठीक है !

पहला —[सहसा] क्या ठीक है ?

दूसरा —एँ ?...कुछ नहीं !...सब ठीक है ! [होठों पर अंगुली नचाता हुआ एक मेज़ की ओर देखता है] अं...ऽऽ...ऽऽ...वह रहा ताश ! [जा कर बैठता है। जम्हाई लेता है। ताश फेंटता हुआ पहले सदस्य से] आओ भाई कार्डज़ खेलें !

पहला —खेद है...मुझे कार्डज़ खेलना नहीं आता।

दूसरा —ओऽऽ !

पहला —तुम्हीं आ जाओ। लूडो खेलेंगे !

दूसरा —सो सारी ! मैं आपका यह खेल नहीं जानता। [स्वगत] खैर, जब तक ......[खान को पुकारता है] खान भाई !...अरे ओ खान भाई !

खान —[दूसरे कमरे से आता हुआ] हाजिर हुआ शाब ! [समीप आकर] क्या हुकम है शाब ?

दूसरा —एक चाय लाओ !

खान —अभी लाता शाब ! [प्रस्थान]

[दूसरा सीटी बजाता हुआ ताश फैंटता है]

खान —[चाए लेकर प्रवेश] लीजिए शाब ! [मेज़ पर रख कर] और कुछ लाऊं शाब ?

दूसरा —[हल्की डांट] तुम्हें मालूम नहीं खान कि पहले ही आदेश के साथ सब कुछ पूछ लिया या बता दिया जाता है। अब जब तक तुम खाने के लिये कुछ लाओगे तब तक चाए ठडी हो कर शरबत बन जाएगी !

खान —[सिर खुजाता हुआ] गलती खा गया शाब !

दूसरा —ठीक है, ठीक है। आगे याद रखना।

खान — ठीक है शाब !

दूसरा —जाओ अपना काम करो !

[खान का प्रस्थान]

दूसरा —[चाए पीता हुआ स्वगत] कितनी त.ज़ा प्रदान करती है यह चाए ? मजा आ रहा है।

पहला —[स्वगत] खैर, कोई न कोई तो आएगा जो मेरे साथ खेलेगा ।

दूसरा —[स्वगत] कितना ही अच्छा हो यदि मजेदार चाए की तरह, मेरे साथ खेलने के लिये कोई मनोरंजक पार्टनर आ जाए। [पहला और दूसरा सदस्य काफी तथा चाए के घूंट भर रहे हैं] ।

तीसरा सदस्य—सिर खुजाते हुए तथा भुनभुनाते हुए प्रवेश] वन, टू... ! फस्ट सैकण्ड...! हुं ऽऽ ! ओनली टू एण्ड आई श्री अर्थात थरड ।

पहला —यह कौन-सा हिसाब लगाया जा रहा है ?

तीसरा —यों ही देख रहा हूं कि दो टेबल लग गए हैं और मैं तीसरा हूं।

दूसरा —ठीक ही दीख रहा है ।

तीसरा —ओ के ! ओ ऽ के ! [भुनभुनाता हुआ तब मेज़ों को देखता है] कैरम बोर्ड...चैस...कार्डज...आंयें ऽऽ...वंडरफुल ।

पहला —[तीसरे से] आओ लूडो खेलें ! [हाथ में उठा कर लूडो दिखाता है] बहुत ही रोचक खेल है । चले आओ !

तीसरा —[गर्दन झटक कर] यह बच्चों का खेल है ।

दूसरा —[ताश फेंटता हुआ] तो आओ ताश खेलेंगे !

तीसरा —[नाक चढ़ा कर हाथ से अभिनय करता हुआ] ओ' नो ! यह खेल महिलाओं के लिये है।...तुम्हीं आ जाओ, चैस खेलेंगे। यस...कम आन !

पहला —चैस बूढ़ों का खेल है ।

दूसरा —लाचारों की पसन्द है ।

तीसरा —खैर तुम्हारी इच्छा ! वैसे तो इसे शाही खेल कहा जाता है और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खेला जाता है। [तनिक सीटी के बाद खान को पुकारता है] ओ खान ?...ओ खान ?... कहां गुम हो गए हो तुम ?

खान – [प्रवेश] हाज़िर हूं शाब !

तीसरा —कहां गुम हो गए थे ?

खान —अन्दर था शाब ! बड़ा शाब के करीब था शाब ।

तीसरा —एक छोटा लाओ !

खान — कौन-शा लाऊं शाब ?

तीसरा —स्काच !

खान —साथ में क्या लाऊं शाब ?

तीसरा —[खीज कर] अब लाओगे भी...या यों ही पूछे जाओगे ?

खान —ठीक है शाब ? [स्वगत सिर खुजाते हुए] बाद में पूछा क्या लाऊं शाब ? और पहले पूछा क्या लाऊं शाब ?—दोनों पलड़ा बराबर बैठता है। अब बीच में पूछेगा ! हां बीच में !

तीसरा —[डांट] अभी तक यहीं खड़ा है कम्बख्त ?

खान —अभी जाता शाब ! अभी जाता ! [जाते हुए फिर लौटता है।] क्या बोला था शाब ? क्या लाऊं ?

तीसरा —[चीख कर] सुना नहीं था ? एक छोटा—स्काच !

खान —भूल गया था शाब ! अभी लाता ! [प्रस्थान]

तीसरा —[बड़बड़ा कर] कैसे कैसे वेरों से पाला पड़ता है ? [अभिनय सहित सीट पर कोई धुन छेड़ता है]

खान —[प्रवेश] लीजिए शाब ! [मेज़ पर छोटा रखने के बाद पहले दूसरे सदस्यों की मेज़ों पर से खाली प्याले उठाता है प्रस्थान]

तीसरा —[एक घूंट भरता है। जाम हवा में लहराता है] फार दि सेक आफ ओनली परसनल हेल्थ एण्ड चिअर फुलनेस ! [जाम को चूम कर फिर एक घूंट भरता है]

चौथा सदस्य—[पाइप पीते हुए प्रवेश करता है। कुछ पल के लिये समाचार-पत्र-पठन स्टैंड के सहारे खड़ा हो कर एक दो कश खींचता और चारों ओर का वातावरण चुपचाप देखता है। फिर स्वगत] आई वांट माई लवली कैरम बोर्ड ! [देखते ही उस ओर अंगुली उठाता है] ओ' टेबल नम्बर सात ! गुड लक ! सेवन इज नाट एन इवन नम्बर......बट एन ऑड नम्बर ! [कश खींचने के बाद टेबल की ओर जाता हुआ] रिअली वेरी गुड ! [दीर्घ श्वास के साथ बैठता हुए पहले से] आओ खेलें !

[पहला मौन ही उसे देखता और नज़र हटा लेता है]

चौथा —[दूसरे से] तुम्हीं आओ ! कैरम हो जाए !

दूसरा —सारी !......यहां आओ ताश खेलेंगे !

चौथा —सो सारी !......[तीसरे से] तुम तो आओगे मेरे साथ ?

तीसरा —किस लिये ?

चौथा —वी' शैल एन्जॉए कैरम बोर्ड !

तीसरा —आई डोंट नो दिस गेम ! आओ चैस खेलेंगे !

चौथा —[स्वगत] इडिअट ! बोलता अंग्रेज़ी है और कैरम बोर्ड जैसी सिम्पल गेम नहीं जानता । [प्रकट] सो सारी......सेम इज विद मी !

तीसरा —[स्वगत] साला कहीं का । चैस जैसी वैस्टरन गेम जानता नहीं और बकता वैस्टरन लैंग्वेज अर्थात अंग्रेज़ी है । [चौथे की नकल] सेम इज विद मी !......हुं !

कुछ क्षण मौन रहता है । सभी जैसे कुछ सोच रहे हैं । तत्पश्चात एक दूसरे की देखा-देखी अकेले-अकेले खेलना आरम्भ करते हैं । यथा—आप ही गुरु और आप ही चेला । कोई ताश फेंट कर पत्ते बांट रहा है, कोई कैरम के गोट स्ट्राइक कर रहा है, कोई चैस के घोड़े और प्यादे दौड़ा रहा है इत्यादी । इसी बीच एक धोती चश्मा पहने व्यक्ति दार्शनिक मुद्रा में प्रवेश करता है, और समाचार पत्र को उलट-पलट करने के बाद उसे पढ़ने लगता है ।

पहला —[नवागंतुक को देख कर व्यंग्यात्मक स्वर में] आ गया फिलासफर !

तीसरा —[हल्के नशे में] हूं...ऽऽ ! मीनिया केस !

चौथा —[संवेदनशील] त...त...त [व्यंग्य से] तरस के योग्य है बेचारा । मेरे पास आता......कैरम का मजा ही ले पाता ।

दूसरा —तुम्हारे पास क्यों आता ? भला मेरे साथ न खेलता ?

पहला —तुम दोनों मूर्ख हो । उसे यदि खेलना ही होगा तो मेरे साथ लूडो का मजा न लेगा ?

दूसरा —सो तो ठीक है किन्तु तुमने हमें मूर्ख क्यों कहा ?

चौथा —इट मीनज......तुमने हमें गाली दी है ।

पहला —ठीक ही तो कहा है । तुम दोनों मूर्ख हो ।

दूसरा/चौथा—[एक साथ] शट-अप !

पहला —यू शट-अप !

चौथा —यू नानसेंस !

दूसरा —ईडिग्रट !

पहला —ज्यादा न बको। यह क्लब है......यारों की गली नहीं।

चौथा —यह क्लब हमारा भी है।

दूसरा —तुम्हारे बाप का है क्या ?

पहला —बाप का नाम लेता है साले ?

दूसरा —साला कहता है साले ? उल्लू का पट्ठा। [ये गालियां उग्र-लड़ाई का रूप धारण कर लेती हैं। सीने तानते और बाजू कसते हुए——]

पहला —गाली मत बको।

दूसरा —किसने गाली दी ?

चौथा —[हंसते हुए] इसके बाप ने।

पहला —मैं तुम्हारे दांत तोड़ दूंगा।

दूसरा —मैं तुम्हारी हड्डी पसली एक कर दूंगा।

पहला —तुम्हारे होश ठिकाने लग जाएंगे।

चौथा —उल्लू का पट्ठा।

दूसरा —हरामजादा।

पहला —आंखें दिखाता है ? नोच डालूंगा।

चौथा —अबे चू...प.. कर...र !

पत्र-पाठक—[चश्मा ठीक करता हुआ आगे आता है। तनिक गम्भीर] यह क्या हो रहा है ? [लड़ाई का वातावरण तनिक शांत होता है]

पहला —यह दोनों मुझे गालियां दे रहे हैं।

दूसरा —पहले तुमने गाली दी थी।

चौथा —हां, हां ! पहले इसी ने गाली दी थी।

पहला —मैं सच कह रहा हूं...मैंने कोई गाली नहीं दी।

दूसरा —हां ! इसने हमें मूर्ख कहा था।

पहला —किसी को मूर्ख कहना तो साधारण सा रिवाज है। मैनर है। आजकल...अंग्रेजी शराब की तरह।

दूसरा —तुम्हारे रिवाज और मैनर की ऐसी तैसी।

पहला —[पत्र पाठक की बांह झिंझोड़ता हुआ] देखो देखो...अब फिर गर्मी खाने लगा है।

चौथा —अरे बिगाड़ ले हमारा क्या बिगाड़ेगा तू? दो के सामने तुझ अकेले की कौन सुनेगा?

दूसरा —अबे चुप क्यों हो गया। अब बोलता क्यों नहीं?

चौथा —अब क्या बोलेगा साला?

खान —[ऊंचे स्वर में] शुनो! ..शुनो भाई शुनो!
[सभी खान की ओर देखने लगते हैं] शुनो आप बड़े शाब से मुलाकात करेंगे। याद रहे!...शुबह।

पहला/दूसरा/चौथा—[एक साथ] क्यों ऽ भला ऽऽ......?

खान —कल शुबह आपके इश फशाद का जवाब तलब होगा।

चौथा —[स्तब्ध] जवाब तलब?

दूसरा —[विस्मित] कौन करेगा?

खान —कल शुबह गाली कमीशन में इनक्वायरी होगा। [झुक कर] गुस्ताखी माफ! [प्रस्थान]

पहला —तो बात यहां तक पहुंच गई?

पत्र पाठक—[व्यंग्य से] बड़े बड़े कमीशन देखे......बड़े बड़े कमीशन सुने और बड़े बड़े कमीशनों के बारे में पढ़ा। ...किन्तु गाली कमीशन भी कोई होता है—यह आज ही सुना। कल कोई छींक मारेगा तो सम्भव है—छींक कमीशन भी सुनाई दे जाए। [सभी हंसते हैं] हंसो मत। [गम्भीर] भाई, अपनी अपनी मेज़ देखो।

सभी अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। लड़ाई के बाद की मुद्रा में। मौन। कुछ देर बाद एक दीन-सा फटेहाल व्यक्ति, जिसकी अवस्था सर्वाधिक है, बीड़ी पीता, चुटकियां बजाता हुआ प्रवेश करता है और सीधा बाएं द्वार के साथ पड़े उपेक्षित स्टूल के साथ सट कर भूमि पर बैठ जाता है। स्टूल की धूल झाड़ता हुआ व्यंग्यात्मक हंसी हंसता हुआ लम्बे लम्बे कश खींचता हैं।

पगला —हि ऽ ही...ही ही ही...... ही...ही ही ही...! [कुछ देर के बाद खड़ा होता है। अंगड़ाई लेता है। कुछ क्षण पत्र-पाठक को बड़े ध्यानपूर्वक देखता है। फिर उसके पास जा कर खड़ा हो जाता है और एक विश्लेषक की भान्ति सर से पांव तक उसे देखता हुआ दूसरी बीड़ी सुलगाता है]

पत्र पाठक—तुम मुझे नाप तोल कर क्या देखे जा रहे हो ?

[पागल पूर्ववत उसे देख रहा है]

पत्र पाठक—सुना नहीं ?......यह मेरी ओर क्या देख रहे हो?

पगला —[हंसता है] ही ही ही...कुछ नहीं ! ही ही ही...कुछ भी तो नहीं !

पत्र पाठक—तो जाओ अपना काम करो। [नकल] ही ही ही।

पगला —[दाएं हाथ से उसी की ओर संकेत करके] ही ही ही......

पत्र पाठक—जाते हो कि नहीं ?

पगला —आप से एक बात पूछूं ?

पत्र पाठक—जल्दी पूछो 'ही ही महाशय'।

पगला —यह क्या पढ़ते हैं आप ?

पत्र पाठक—समाचार-पत्र है यह।

पगला —आप इस में क्या पाते हैं कि रोज़ आकर इसी में खोए रहते हैं ?

पत्र पाठक—[गर्व से] इसमें संसार की बड़ी बड़ी घटनाओं और बड़े बड़े लोगों के बारे में लिखा रहता है। साधारण लोगों के जीवन की झलक मिलती है। और......

पगला —[विस्मित] साधारण लोगों के जीवन की झलक भी ?

पत्र पाठक—हां तो !

पगला —[प्रफुल्लित हंसी के साथ] तब तो इसमें मेरे बारे में भी लिखा होगा ?

[पत्र पाठक अवाक सा देखता रह जाता है]

पगला —ही ही ही......अवश्य लिखा होगा। ही ही ही...क्या लिखा है ?

पत्र पाठक—[कटाक्ष] जाओ जाओ बीड़ी फूंको ! [नकल करता है] जरूर लिखा होगा ! ही ही ही......

पगला —[करुण] क्या मैं साधारण लोगों में से नहीं हूं ?

पत्र पाठक—नहीं।

पगला —[रुआंसा] नहीं......?

पत्र पाठक—अब जा भी...और बीड़ी फूंक।...सुना नहीं ?

पगला —[कथित पर स्वगत मनन] जा अब...और बीड़ी फूंक... सुना नहीं ? [पाठक से] बीड़ी के लिये पैसे दे सकते हैं आप ?

पत्र पाठक—[चिल्ला कर] तुम जाओगे कि नहीं ? [बड़बड़ाता है] न जाने इन लोगों को क्लब की मेम्बरशिप कैसे मिल जाती है ?

पगला —[नम्र तथा मित्र भाव से] नाराज़ क्यों होते हैं आप ? जाता हूं, चला जाता हूं। वैसे मैं इस क्लब का सब से पुराना सदस्य हूं। इसके निर्माता का बेटा हूं। ही ही ही......[हंसता हुआ अपने स्थान पर आ जाता है] तुम ठीक कहते हो। मैं साधारण लोगों में से भी नहीं हूं। मैं तो पागल हूं, पगला ! समाचार पत्र में मेरे बारे में क्यों छपेगा 'भला ? मैं कोई वह तो हूं नहीं, जो कुछ तुम हो ! ठीक कहा न मैंने ? [हंसते हुए बीड़ी सुलगाता है और स्टूल को सीधा खड़ा करके उस पर बैठने की असफल चेष्टाएं करता है। फिर खीझ कर निराश एवम् उचाट-सा भूमि पर बैठ जाता है— पूर्ववत। शेष सभी पात्र अकेले अकेले खेलने में मस्त हैं। अथवा कुछ बैठे बैठे हरकतों में हैं। कुछ पलों के बाद हाथ में दो तीन पुस्तकें लिये किताबी का प्रवेश ! लम्बे बाल ! सीधा पुस्तकों की अलमारी के पास आ जाता है। चारों ओर देखता है और फिर अलमारी खोल कर किताबें टटोलने लगता है। एक पुस्तक निकालता है—देखता है— रखता है और इसी प्रकार.. ...]

किताबी —[पुस्तकों के नाम देखता हुआ] गोल गप्पिया प्यार !...... इमलिया खुमार !......नींबुई प्रेमी !..... लाचाऽऽर हसीना !... खांसी खुश्क !......तैरती लाशें !......मुंह बोलते कंकाल !... रेडिएटिंग इश्क ! वाह ! वाह ! इस उपन्यास की बात ही क्या है ? खूब बिक्री हुई है इसकी ! रेडिएटिंग इश्क ! रेडिएटिंग इश्क तो बाज़ार में मिलता ही नहीं ! अब तो सुना है कि इस उपन्यास के नकली संस्करण भी प्रकाशित हो रहे हैं।

[चूम कर] किस अंधे को मालूम था कि रेडिएटिंग इश्क इस अलमारी में से मिल सकेगा ?

पगला —[किताबी के निकट आकर] भाई, तुम क्या कह रहे हो ? क्या देख रहे हो ?

किताबी —[वही उपन्यास गर्व से दिखाता हुआ] उपन्यास ! यह देखो ! यह बहुत ही अच्छा उपन्यास है।

पगला —यह ?

किताबी —हां, यही ! रेडिएटिंग इश्क ! नाम भी क्या जोरदार है ! [आह भर कर] तुम्हारी कसम, गर्मी आ गई पढ़ कर !

पगला —उपन्यास पढ़ कर तुम्हें क्या मिलता है जो नाम से इतनी गर्मी आ गई ?

लिताबी —अरे, यह मत पूछो ! रातों की नींद हराम; दिन का चैन फरार। रात को सूरज और दिन को चांद दिखाई देता है। सुनहरे रंगीन सपनों में वर्ष बीत जाता है। मैं एक बाढ़ में बह जाता हूं।

पगला —तो फिर इन्हें न पढ़ा करो। साहिल से बेसुध नौकाएं डूब जाया करती हैं।

किताबी —तो क्या हुआ ? यह भी तो एक निचला किनारा कहलाती है।

पगला —यह तो तुम्हारी समझ की बात है। तुम पागल तो नहीं कहलाते। मुझे दुनियां पगला कहती है। ही ही ही...... क्योंकि मैं ऐसी ही बातें करता हूं।

किताबी —डूबने में ही तो सुख है। खो जाने में ही मुक्ति है। ...और फिर...इन उपन्यासों द्वारा मैं समाज का सजीव चित्र भी तो देखता हूं।......कई पात्र सामने आ जाते हैं।

पगला —[आश्वस्त] अच्छा...?

किताबी —मैं झूठ बोल रहा हूं क्या ?

पगला —नहीं ! यह बात नहीं !

किताबी —तो फिर ?

पगला —[तनिक मौन के बाद] एक बात पूछूं ?

किताबी —पूछो !

पगला —मैं भी समाज का एक पात्र हूं न ?

किताबी —हो तो !

पगला —इन उपन्यासों में मेरे विषय में क्या पढ़ा है तुमने ?

किताबी —तुम्हारे विषय में ?

पगला —हां, मेरे विषय में !

किताबी —[उपेक्षित दृष्टी डालता हुआ] अबे जा, मुंह छिपा के बैठ ! मुझे पढ़ने दे ।

[पगला अचम्भे से देखता है]

किताबी —[हाथ दिखाता हुआ] अबे जाता है या दूं एक झापड़ ?

पगला —[हंसी] ही ही ही......मैंने तो यूं ही पूछ लिया भाई ! नाराज़ क्यों होते हो ? तुम पढ़ो......खूब पढ़ो ! रेडिएटिंग इश्क...! [अपने स्थान की ओर जाता हुआ] ही ही ही... रेडिएटिंग इश्क ! [अपने स्थान पर खड़ा हो कर चारों ओर देखता हुआ] ही ही ही......रेडिएटिंग इश्क...ही ही ही !

एक झुनक के साथ संगीत उभरता है और धीरे-धीरे शान्त होकर मौन हो जाता है । कुछ ही समय पश्चात सभी सदस्य एक दूसरे की देखा-देखी अकेले-अकेले खेल आरम्भ करते हैं।...वह मारा, यह मारा। इधर मारा, अब उधर मारा।......दो तीन पांच। सीकवेंस गुलाम, बेगम, बादशाह ।......वह गया। ले, हाथी मात खा गया । अरे बचा ले अपना राजा। यह रही शह और ये मात। इत्यादि स्वरों की खिचड़ी पक रही है। कुछ पल के लिये ये स्वर तीव्र गति धारण करते हैं और धीमे होना शुरू हो जाते हैं। इसी बीच व्याकुलता-सूचक संगीत-धुन उभरने लगती है ।......हताश होकर सभी ऊब से भर जाते हैं । नए स्वर उभरना आरम्भ होते हैं। उफ यह खेल अब बोझ बन गया है। उफ...ऊब गया हूँ इस तरह खेल-खेल कर ! हाए, अब और खेलने को मन नहीं रहा ! ओह, क्या करूं ? आई एम एग्ज़ास्टिड ! व्याकुलता-सूचक संगीत-धुन पूर्ण आवेग में आने के बाद धीमी होकर पृष्ठभूमि में चलती रहती है।

[सभी असमंजस में पड़े क्षण भर को एक दूसरे की ओर देखते हैं]

पहला —अब क्या करें ?

सभी —हम क्या करें ?

दूसरा —इस प्रकार अब और नहीं खेला जाएगा !

सभी —हां, और नहीं खेला जाएगा ।

[क्षणिक अंतराल]

[पगला हंसी और कहकहों से भवन गुंजा देता है। सभी के प्रश्न इस की आवाज़ से दब जाते हैं]

पहला —[संकेत करके ऊंचे स्वर में] यह पागल है। [सुनते ही पगला ही ही ही......हंसता हुआ चुप हो जाता है और सभी पहले की ओर ध्यान से देखने लगते हैं] सुना तुम सब ने ? यह पागल है पागल !

दूसरा —हां हां पागल है।

तीसरा —इस पागल को बाहर निकाल दो !

पहला —पागल का यहां क्या काम ?

चौथा —एक पागल यहां नहीं रह सकता !

पांचवा —निकाल दो, इसे जल्दी निकाल दो !

सभी —निकाल दो इसे। निकाल दो। इसी समय निकाल दो !

पगला —[व्यंग्यात्मक] हां ! निकाल दो मुझे ! मैं पागल हूं ! ......हां हां मैं पागल हूं।......मगर तुम क्या हो ? बोलो ! तुम क्या हो ? उत्तर दो !.....चुप क्यों हो ?

पहला —अब बोलने लगा है !

चौथा —हां हां ! बोलता है और प्रश्न भी करता है !

पगला —[पूर्ववत] हां, बोलता भी हूं ! प्रश्न भी करता हूं ! किन्तु तुम......तुम उत्तर क्यों नहीं दे रहे ? [शांत होता हुआ ताने देता है] परन्तु तुम कहोगे क्या ? तुम्हें स्वयं ज्ञात नहीं कि तुम क्या हो ? तुम्हें जीवन से घृणा हो गई है ! घृणा ! समझे ? [ऊंचे स्वर में] जीवन से घृणा ! [अट्टहास] हा हा हा...ऽऽ .....[सहसा शांत-गम्भीर] वास्तव में मैं जानता हूं : जीवन

के आंचल में तुम एक ऐसा धब्बा हो जिससे तुम नहीं...अपितु जीवन ही तुम से कलंकित हो कर ऊब चुका है !

तीसरा —बन्द करो अपनी यह बक-बक !

दूसरा —[आक्षेपक] भीजा चाटने लगा है !

पगला —[तनिक चिल्ला कर] सत्य की कटुता को सहन करो ! समझो ! यह मेरी बक-बक नहीं—सच्चाई है। ऊब चुका जीवन तुम से ! तुम नहीं ऊबे ? तुम निर्जीव हो चुके हो। तुम्हारी गति मुर्दों की सी बन चुकी है। [हांफता हुआ] हां, मुर्दों की सी गति !

[हक्के बक्के से सभी आपस में गुनगुनाने लगते हैं]

—मुर्दों की सी गति ?

—हमारी मुर्दों की सी गति बन चुकी है ?

—सच कह रहा है।

—पागल नहीं, फिलासफर है यह।

—दार्शनिक है।

—नहीं हमें मुंह पर गालियां दे रहा है।

—[ऊंचा स्वर] अरे समझो, क्या कह रहा है ? यह पागल नहीं है।

—[सर्वोच्च स्वर] शत प्रतिशत पागल। डाऊटलेसली हंड्रेड परसेंट मैड !

सभी —पागल है यह, पागल है।

पगला —[संतप्त] ठीक है। मैं पागल हूं। किन्तु एक बात का उत्तर दे सकोगे क्या ? [आवेश में] मेरा यह पागलपन किसकी देन है ? किसने मुझे पागल बनाया ?...तुमने ? ...तुम्हीं ने ! हां, तुम सब ने ! [आपस में सभी बड़बड़ाने लगते हैं] सुनो ! मेरी बात सुनो ! [बारी बारी सभी ध्यान देने लगते हैं।] मैं इस क्लब का बहुत पुराना सदस्य हूं। कम से कम पच्चीस वर्ष पुराना। किन्तु मेरा इतिहास चिर पुरातन है। मेरे इतिहास की आंखों ने इसको......कई बार बनते और बिगड़ते देखा है।......संदेह न करो। अपनी आंखों से देखा है। जितनी बार यह क्लब बना मेरे हृदय में एक

गुलाब खिला। जितनी बार यह बिगड़ा उतनी बार गुलाब की पत्तियों को धूलि-धूसरित होते देख कर मेरे मन-मस्तक पर वज्रपात हुआ। [किताबी से] भैया किताबी, सुन...... रेडिएटिंग इश्क में क्या रखा है ? रेडिएटिंग पागल को पढ़। कभी इसे भी पढ़ कर देख और सोच...सोच कि यह क्यों पागल है ? तुम सब का दुख, तुम सब की घुटन, तुम सब की अशांति का आखेट मैं हूं। तुम सब आते हो, क्लब बनने की आशा होती है किन्तु...किन्तु उजाड़ कर चले जाते हो ! न तुम रह पाते हो, न ही यह क्लब बन पाता है।

पहला —[आक्षेपक] तुम अब हद से बढ़ रहे हो।

पगला —नहीं ! तुम सब स्वयम् सोचो, मेरा कहना सच नहीं है क्या ?

पहला —[आक्षेपक] जो जी में आता है बके जा रहे हो ?

दूसरा —पागल है साला ?

तीसरा —हमें पागल बनाता है। कभी मुर्दा और कभी...उजाड़ू कहता है।

चौथा —इससे पहले कि यह हमें पागल बनाए...इसको ही निकाल दो यहां से।

सभी —निकाल दो इसे। निकाल दो, निकाल दो। [पगला निरंतर कहकहे लगाता है जिनके बीच सभी मिल कर निकाल दो, निकाल दो कहते हुए उसे धक्के मार मार कर निकाल देते हैं। कुछ देर तक पृष्ठभूमि में भी उसके दूर जाते हुए कहकहे सुनाई देते रहते हैं।]

पहला —मनहूस था।

दूसरा —जब से यहां था, एक ऊब-सी रहती थी।

तीसरा —आज कुछ अधिक ही दौरा पड़ा था साले को।

चौथा —[सभी से] अब जो निकाल दिया गया है तो क्या ? चलो मजे से खेल आरम्भ करें।

["चलो भाई चलो। चलो...," कहते हुए सभी अपनी अपनी मेज़ सम्भालते हैं। वातावरण पूर्ववत है। एक दूसरे की देखा देखी सभी अकेले अकेले खेलना शुरु करना चाहते हैं किन्तु कर नहीं पाते।]

पहला —[थका हुआ] यों कब तक खेल सकेंगे ?

दूसरा —[ऊबा हुआ] बार बार बोरियत को बुलावा भेजने वाली बात है।

तीसरा —और नहीं तो क्या ? कुछ देर खेलो और फिर घिसे पिटे रिकार्ड की तरह बजना शुरु हो जाओ जिसपर डगमगाती हुई सूई कभी इधर, कभी उधर भटकने लगती है और सुर सभी बेसुर हो जाते हैं।

चौथा —तुम ठीक कहते हो लेकिन धैर्य से काम लो। खेल शुरु करो।

सभी प्रश्नवाचक दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते हैं और कुछ पल में ही गर्दनें हिला हिला कर हामी भरते हैं . 'हां'। खेलना शुरु करते हैं—आप ही गुरु आप ही चेला—'वह मारा ! अरे इस तरह से नहीं, इस तरह से। देख उधर मारा। क्वीन हारी; गई। वण्डरफुल। .... लंगड़ी, इक्का दुक्की और तीन। तीन अट्ठे। मारा गया। फिर डील करो। ......ऐसी तैसी तेरे घोड़े की। अपना प्यादा देख किस चाल चलता है। वाह रे मेरे वज़ीर...मार ले बादशाह !......चल प्यारे, अपनी गोट नब्बे तक पहुँच गई। अरे पचानवे पर सांप निगल जाएगा और गिर जाओगे नब्बे से सात पर। अब मेरी चाल देख इत्यादी अनेक स्वरों की खिचड़ी पक रही है। धीमे धीमे उभरते ये स्वर कुछ पल के लिये तीव्र गति धारण करते हैं और पुनः धीमे होने लगते हैं। व्याकुलता की प्रतीक धुन उभरनी आरम्भ होती है। थके हारे हताश होकर सभी ऊब से भर जाते हैं। नये स्वर उभरने लगते हैं :

—उफ यह खेल अब बोझ बन गया है।

—उफ...ऊब गया हूं इस तरह खेल खेल कर।

—हाए, अब और खेलने को मन नहीं रहा।

—ओ-हो, क्या करूं ? आई एम एग्ज़ास्टिड।

व्याकुलता की प्रतीक धुन पूर्ण आवेग में उभरती

है। धीरे धीरे प्रकाश मद्धम होना आरम्भ होता है। सभी प्रश्नवाचक दृष्टि से एक दूसरे की ओर क्षण भर देखते हैं।

तीसरा —हम क्या करें ?

पहला —अब क्या करना चाहिये ?

दूसरा —इस तरह अब और नहीं खेला जाता।

कुछ —और नहीं खेला जाता।

सभी —हां, और नहीं खेला जाएगा, हम से।

प्रकाश पूर्णतया मद्धम हो जाता है जिस में से केवल छायाएं दिखाई देती हैं। कुछ क्षण पश्चात सब के बीचों बीच इस ओर से उस ओर तक पैंजनियों सहित पद चाप बार बार सुनाई देने लगती है। थोड़ी ही देर में प्रकाश के तीव्र कम्पन द्वारा उत्पन्न तिलसमी प्रभाव तले सभी गुनगुनाने लगते हैं।

पहला —कौन है ?

दूसरा —अरे सुन रहे हो यह पायल की झंकार ?

तीसरा —हां, सुन रहा हूं। कितनी मीठी ?

पहला —कितनी मधुर है यह पगध्वनी ?

चौथा —यह पैंजनियों का स्वर है किस का ?

तीसरा —कोई छाया प्रतीत होती है !

दूसरा —आखिर है कौन ?

सभी —कौन है यह ?

पैंजनियों का स्वर उत्तेजक गति धारण कर लेता है। भय से सभी सिहर जाते हैं।

पहला —कौन हो तुम ?

सभी —हां, कौन हो तुम ?

तीसरा —सामने आओ !

दूसरा —हां, सामने आओ !

एक पल बाद पैंजनियों का स्वर मौन हो जाता है। सभी अवाक से इधर उधर देखते हैं। सामने द्वार के भीतर व्यक्ति-आकार में, फैलते हुए प्रकाश में,

दाएं बाएं कंधों पर केश बिखेरे एक श्वेत वसना चतुर्भुजा जिसके एक हाथ में धान, दूसरे में पुस्तकें तीसरे में त्रिशूल और चौथे में पुष्प हैं—प्रकट होती है। एक पल पश्चात चौंधियाते रंग-बिरंगे प्रकाश की कला के प्रभावोपरांत द्विभुजा के रूप में दिखाई देने लगती है। अपनी-अपनी जगह पर सभी एक साथ इस प्रकार लपकते हैं कि आधी उठी हुई और आधी बैठी हुई स्थिति में स्थिर हो जाते हैं जैसे अकस्मात झपट कर उसे अधिकार में ले लेंगे— प्रतीक संगीत।

पहला — [पूर्ववत] सुन्दर, अति सुन्दर !

दूसरा —[उठता हुआ] रोमांचकारी !

तीसरा —[उठ कर मोहवश उसकी ओर झुकते हुये] लावण्या ! ग्रामवधु !

चौथा —[उठ कर मोहवश उस की ओर झुकते हुए] ए ग्रेट...सारी ! आई हेव नो वर्ड टु प्रेज ! [सीने पर हाथ रखते हुए] वुड गाऽड आई कुड..... ।

दूसरा – तुम कौन हो रूपसी ?

तीसरा —यहां......इस समय......कैसे......?

चौथा —[ठंडी आह भर कर] शी मस्ट लव मी ! ओ' गाऽऽड !

प्रतीक संगीत मधुर संगीत का रूप धारण करने लगता है। इसके साथ ही समस्त मंच पर इंद्रधनुषि प्रकाश फैल जाता है।

भिक्षुणी —[गूंजती वाणी में] लगता है तुम सब मुझे प्यार करना चाहते हो ?

सभी —हां, मैं तुम्हें प्यार करना चाहता हूं !

चौथा —लेकिन तुम हो कौन ? हू आर यू सो मच.........

भिक्षुणी —[गूंजती वाणी में] मैं हूं भिक्षुणी ! जीवन की संचारिणी !

पहला —[गुनगुनाता है] भिक्षुणी ?

दूसरा —[गुनगुनाता है] जीवन की संचारिणी ?

सभी गुनगुनाते हैं...'भिक्षुणी ! संचारिणी ! जीवन की संचारिणी ।

भिक्षुणी —[गूंजती वाणी में]तुम सब बहुत दुखी प्रतीत होते हो ! अब और घुटन से चूर हुए दीखते हो !

सभी —हां !

दूसरा — लेकिन तुमने कैसे जाना ?

भिक्षुणी —भिक्षुणी से कुछ भी गोपनीय नहीं !......मैं सब जानती हूं। ......तुम जी नहीं रहे ! जीवन के धोखे में मरण भोग रहे हो। अकारण एवम् असामयिक मरण !

सभी —[धक् से] मरण ?

तीसरा —अर्थात मृत्यु ?

चौथा —यू मीन लिविंग इन डेथ ?

भिक्षुणी —निःसंदेह ! तुमने मेरा भाव ठीक ही समझा !......पगला सत्य कहता था—तुम्हारी गति मुर्दों की-सी है।

पहला —अब हमें क्या करना चाहिये ? इस स्थिति से हमें घृणा हो चुकी है ?

भिक्षुणी —अभी हुआ ही क्या है ? और घृणा होनी शेष है !

सभी —[एकाएक दग्ध से] दया करो हम पर ! दया करो भिक्षुणी !

पहला — तुम ही कोई उपाय कर सकती हो ?

सभी —हां, तुम्हीं कर सकती हो !

चौथा —पिटी अस ओ' भिक्षुणी ! हम पर तरस खाओ !

भिक्षुणी —मैं भिक्षुणी हूं ! जीवन की संचारिणी ! सृष्टी के जिस अंश के साथ मेरा सम्बन्ध स्थापित रहे उसी में जीवन का वास रहता है। कर्म मेरा मुख्य सिद्धांत है ! कर्मों के अनुसार मेरा सम्पर्क बनता है और आप के कर्म मुझे विवश कर रहे हैं कि आपसे सम्बन्ध विच्छेद कर लूं।

सभी —नहीं ! ऐसा न करना ! ऐसा न करना, भिक्षुणी !

भिक्षुणी —मेरी कोई मर्यादा भी तो है ?......मैं विवश हो चुकी हूं। इस मन्दिर से सही व्यक्तियों को क्या मिला ? अभी अभी एक सही व्यक्ति को निकाल दिया......भला नहीं किया !

तीसरा —[जैसे पगले के विषय में अनजान हो] निकाल दिया ? सही व्यक्ति ?

सभी —हमने ?

भिक्षुणी —निःसंदेह !

चौथा —[विचलित एवम् उत्सुक] कौन है वह ? हू इज़ ही ?

भिक्षुणी —इतना शीघ्र भूल गये ?......वही......जिसे तुम पागल कहते रहे ? [प्रश्नवाचक द्रवित स्वर में सभी भुनभुनाते हैं— 'पागल ? पागल ? वही ?] आप सब में जीवन का संचार तभी सम्भव है जब आप सही व्यक्ति को उसका प्राप्य प्रदान करें। [स्तब्ध सभी भिक्षुणी को देखते हैं] जाओ !...... जाओ ! पहले उसे ढूंढो !... तभी शेष समाधान समझा सकूंगी !......मैं जा रही हूं। [संगीत की मधुर लहरों के साथ प्रस्थान के पश्चात वही संगीत और जलता बुझता प्रकाश सब की मानसिक स्थिति का प्रतीक बन जाता है। कुछ समय बाद......]

पहला —समय मत गंवाओ ! चलो, उसे ढून्ढें !

दूसरा —[झकझोक के साथ] चलो !......आओ जल्दी !

"चलो चलो, जल्दी——" कहते हुए सभी मंच को खाली कर देते हैं। प्रतीक संगीत लहरियों के साथ यवनिका।

दृश्य : दूसरा

समय : चांदनी रात। दृश्य—मरघट के एक कोने में एक बट वृक्ष का अंश दिखाई दे रहा है। उसके साथ ही कोई सो रहा है। रात के पक्षी बोल रहे हैं।——कुछ क्षण पश्चाप मरघट की पृष्ठभूमि में कुछ व्यक्तियों की बातें सुनाई देने लगती हैं।

पहला —[थका थका सा] लगता है हम बहुत दूर चले आए हैं ?

दूसरा —हां ! लगता है रात काफी बीत चुकी है।

तीसरा —ढून्ढते ढून्ढते एक बजा दिया । उसका कहीं पता ही नहीं चल रहा ।

दूसरा —पगला ! होगा यहीं कहीं, इधर उधर !

चौथा —[सहसा] अरे वह देखो मरघट में ! कोई सो रहा है !

पहला —हां, सो तो रहा है ।

तीसरा —चलो, चल कर उसी से पूछें ।

दूसरा —हां हां हो सकता है उसने पगले को कहीं देखा हो ।

चौथा —ठीक है ! चलो, चल कर देखते हैं ।

'चलो चलो आओ'—कहते हुए तीनों मंच पर आ जाते हैं ।

तीसरा —[मंच से पृष्ठभूमि की ओर संकेत] आओ भाई ! तुम क्यों रुके हो ?

चौथा भी मंच पर आ जाता है और सब मिल कर सोए व्यक्ति के समीप जाने लगते हैं ।

चौथा —[खुशी से] अरे यही है पगला ।

दूसरा —[एक दम] तो बन गया काम... मिल गया पगला !

सभी [इर्द गिर्द जमा हो कर] धन्यवाद भगवान का ।

चौथा —थैंक गाड !

तीसरा —[हक्का बक्का] यह तो मरा हुआ है ।

सभी —मरा हुआ ?

दूसरा —बिना कफन ? उफ !

पहला —अब हमारा क्या होगा ?

तीसरा —हमारा क्या होगा ?

सभी —हां, अब हमारा क्या होगा ?

पहला —यह सब हमारा अपना ही दोष है । पहले हमने उसे पहचाना नहीं ।

दूसरा —बेचारा...कह भी रहा था कि सब से पुराना सदस्य हूं ।

चौथा —काश ! भिक्षुणी ने पहले ही यह बात हमें समझा दी होती । वुड गॉड...... !

तीसरा —[घोर निराशा से] अब क्या हो सकता है।...चलो लौट चलें।
[चलो चलना चाहिये—कहते हुए सभी लौटने लगते हैं]

पहला —[करुण एवम् गम्भीर] ठहरो !

दूसरा —क्यों ? अब क्या होगा ?

पहला —एक काम कर लें !

सभी —कौन सा काम ?

पहला —कम से कम इसे कब्र में डाल दें।

तीसरा —ठीक है ! [सहसा] किन्तु हमें क्या पड़ी है। मैं जा रहा हूं।

पहला —[दीन-विनीत] केवल इनसान होने के नाते रुक जाओ ! रुक जाओ !

तीसरा —[व्यंग्यात्मक कहकहा लगा कर] इनसान होने के नाते ! कितना बड़ा फतवा हो कर रह गया है तुम्हारा यह शब्द—इन...सा...न ! काफी देर मैं भी इस शब्द का दीवाना रहा हूं ! खैर......[सब से] चलो भाई अब कोई फायदा नहीं ! लाइफ इज़ ए बिजनेस !

पहले के अतिरिक्त सब का प्रस्थान। एकांत सूचक धुन उभरती है और पृष्ठभूमि में साथ चलती है।

पहला —[गम्भीर स्वर में आलोचना] तुम्हारा विचार मिथ्या है मित्र ! लाइफ इज नाट बिजनेस बट रेगुलर बिजी-नैस। [मौन धार कर पगले के शव को पल भर देखने के बाद संवेदनशील स्वर में] समझ चुका हूं मैं ! पगले......तुम पागल नहीं थे। वास्तव में तुम्हीं थे जो कुछ एक मानव को होना चाहिये ! [दीर्घश्वास] सब चले गए ! मैं ही रहा......अकेला मैं ! मेरे जैसा डरपोक व्यक्ति सम्भव है और कोई नहीं होगा किन्तु इस...सूने मरघट में अकेला होकर भी मैं भयभीत नहीं ? अचरज है ! खैर, मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिये ! इस समय कुदाल कहां से मिल सकेगी ? [शोक संतप्त धुन उभरती है। इसी बीच वह मंच से पल भर के लिये प्रस्थान करता है और फिर कंधे पर कुदाल उठाए प्रवेश करता है। कभी शव की ओर देखता है तथा कभी निर्जन का निरीक्षण करता

है। दर्दमिश्रित स्वर में आह्वान करता है] मुझे क्षमा करना मित्र ! क्षमा करना मुझे ! [कुदाल से कब्र खोदता है। शव को उसमें रखता है और मिट्टी डालता है] अंतिम बार नमस्कार है मित्र ! अंतिम नमस्कार ! [गर्दन झुकाए तनिक खड़ा रहता है] मैं जा रहा हूं, मित्र ! मुझे अनुमति दो ! [प्रस्थान करते समय दायां द्वार स्वतः आवाज़ करता हुआ बन्द हो जाता है। किन्चित भय]। यह द्वार क्यों बन्द हुआ ? अपने आप ? अंधकारमय वातावरण......घोर सन्नाटा ? [रात के पक्षियों एवम् जीवों के तीव्र स्वर] अति भयानक ! दूर दूर तक मेरी आवाज सुनने वाला कोई नहीं मिलेगा ! को...ई नहीं !

पगला —[ईको में] निर्भय ! निर्भय मित्र ! यहां तुम्हें कोई भय नहीं !

पहला —[भयमिश्रित विस्मय] तुम कौन हो ? कौन हो तुम ?

पगला —[ईको में] मैं तुम्हारा मित्र हूं !

पहला —मित्र ? [चिन्तन] आवाज तो जानी पहचानी लगती है ? [सम्बोधन] तुम्हारा नाम क्या है ?

पगला —[ईको में] मैं वही हूं जिसे पागल कह कर तुम सबने क्लब से बाहर धकेल दिया था !

पहला —[हक्का बक्का] तुम कहां हो ?......मैं...मैं तो पगले के शव को दफना चुका हूं !

पगला —[ईको में] हां ! तुम मेरा शव दफना चुके हो। मेरी आत्मा को तो नहीं दफना पाए ?

पहला —[मनन] तुम...आत्मा ? [प्रगट] तुम सामने क्यों नहीं आ जाते ?

पगला —[ईको में] असमर्थ हूं मित्र !

पहला —क्लब को तुम्हारी बहुत आवश्यकता है। तुम्हें ढूंढने सभी यहां आए थे, लेकिन......।

पगला —[ईको में] लौट गए ! यही न ? [व्यंग्यपूर्ण हंसी]

पहला —हां !

पगला —[ईको में] वह समय बीत चुका मित्र ! अब केवल मेरी आवाज़ सुनो !

पहला —[तनिक मौन के उपरांत] मुझे तुम्हारी असामयिक मृत्यु का बहुत दुख है।

पगला —[हल्की हंसी] मेरी मृत्यु तो बहुत पहले से घट चुकी थी मित्र ! तब से जब मुझे उपेक्षा और तिरस्कार—जिसके मैं योग्य नहीं था......मिली थी। अब तो मुझे मुक्ति मिली है !

पहला —मुक्ति ?

पगला —हां !......मुक्ति जिस के लिये तुम्हारा कृतज्ञ हूं। इस समय तुम मेरी आवाज़ इसी लिये सुन सके हो क्योंकि मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता था।

पहला —यह जो कुछ मैंने किया......वह मेरा कर्तव्य था। कर्तव्य पालन के लिये कृतज्ञता कैसी मित्र ?

पगला —जैसा तुम उचित समझो ! किन्तु यहां से जाने से पूर्व एक बात मन में रख लो......'सत्य सदा सत्य ही रहता है। सत्य का खण्डन करने के यत्न भले ही होते रहें। सत्य ही आस्तिक का धर्म है। विश्व के प्रत्येक भूखण्ड पर जिन विभिन्न सत्यों के लिये महान वैज्ञानिकों कोपरनिकस, गैलीलियो इत्यादि ने यातनाएं झेलीं, दार्शनिक सुकरात को विष पीने को मिला, महाराजा हरिश्चन्द्र ने कटु परीक्षाएं सहन कीं, गांधी और कैनेडी ने गोलियां खाईं......अंततः इस समाज ने उन सभी सत्यों को गले लगाया और उन महान पुरुषों के मठ और समाधियां बनाईं, उनके नाम अपनी धर्म ज्ञान की पुस्तकों में स्वर्णाक्षरों में लिखे। [दीर्घ श्वास] और इसे भी याद रखो कि हमारा यह क्लब समाज का प्रतीक है।......अच्छा अब मैं विदा चाहता हूं ! विदा ! शुभ विदा !

पहला —[गम्भीर] तुम ठीक कहते हो ! किन्तु इस रहस्य का ज्ञान मुझे आज यहां इस मरघट में आकर ही हुआ। काश, पहले से ही इस तथ्य से अवगत हो चुका होता ! खैर, इस समय तो

नियति का अस्तित्व भी प्रबल दीख रहा है।.....विदा मेरे मित्र ! विदा......अनन्त विदा।

बन्द हुआ द्वार स्वर करता हुआ स्वतः खुलता है। प्रस्थान करता हुआ पहला सदस्य खोया-खोया सा मुड़ कर देखता है, "अन...न्...त विद...द्...दा मेरे मित्र ! अन...न्...त वि...दा...!" कह कर चला जाता है—यवनिका।

दृश्य : तीसरा

समय : रात दो बजे ! दृश्य—एक कमरा जिसमें एक ओर खाली काऊंटर है और कुछ कुर्सियों में पहले सदस्य के अतिरिक्त सब बैठे हुए विचार निमग्न हैं। दो एक कुर्सियां खाली हैं। कुछ क्षण पश्चात् पहले सदस्य का उदासी भरा प्रवेश।

पहला —मैं आप को इन्डोर गेम्ज़ के कमरे में देखता रहा। आप यहां—इस कमरे में ?

चौथा —वह कमरा बन्द हो चुका है। रात के अढ़ाई बज रहे हैं। इट इज़ टू थरटी !

दूसरा —[पहले से] तुम वहां क्यों रुक गए थे ?

पहला —[शांत] उस का अंतिम संस्कार करने !

दूसरा —[व्यंग्यात्मक हंसी के साथ] तुम महात्मा कब से बन गये ?

पहला —महात्मा ?......मैंने कब कहा कि महात्मा बन गया हूं ?......अंततः यह किसी ने तो करना ही था ! वह कोई भी हो सकता था ! मैंने कर दिया।

तीसरा —ठीक है पर तुम्हें क्या पड़ी थी ?

पहला —[स्वगत] पहले महात्मा ! फिर पड़ी थी ! [तनिक आवेश में] अरे यही स्वार्थ हमें डुबो रहा है। [किताबी से] क्यों

किताबी...तुम भी रोज उपन्यास पढ़ते हो। [समाचार पत्र-पाठक से] और तुम अखबारी......तुम भी रोज समाचार-पत्र पढ़ते हो ! अपनी सूझ से बताओ इस क्लब के सदस्य हम सब रोज यहां आते हैं। हर कोई अपना अपना खेल खेलना पसन्द करता है—खेलता है। ऊब जाता है, घुटन और खीझ से भर जाता हैं। बता सकते हो क्यों ?

सभी — क्यों ?

पहला —क्योंकि अन्यों को अपना साथी, अपने ही जैसा व्यक्ति समझने में, उसके खेल में साथ देने में—नीचा हो जाने का भाव रखते हैं। [पहले दूसरा सदस्य और फिर सभी व्यंग्यात्मक कहकहे लगाने लगते हैं]। यह व्यंग्यपूर्ण तीखे कहकहे ? लगाओ, और लगाओ ! लेकिन किसलिये ? ताकि समस्त जगत आप की वास्तविकता से परिचित हो सके—इस लिये ?... पगले के शव से, उसकी आत्मा से, मरघट के वातावरण से मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, काश—आप सब भी...... !

चौथा —[अट्टहास] ज्ञान ? शव से ? मरघट से ? मुर्दों की बस्ती से ज्ञान ?

पहला —हां, मैं वास्तविक तथ्य को समझ गया हूं। जीवन का आधार किन बातों पर है, जान गया हूं।

तीसरा —लगता है पगले का विरसा इसके हाथ लगा है।

चौथा —और यह भी पागल हुआ जा रहा है।

दूसरा —निश्चय ही ऐसा लगता है।

पहला —मानवता और आपस के भाई-चारे के भाव का अभाव ही मुझे यह पागलपन सौंप रहा है।

तीसरा —[सहानुभूति से] यदि कुशलता चाहते हो तो अपने इस घिसे पिटे उपदेश को भी पगले की कब्र में झोंक दो।

चौथा —[समर्थन] इसने ठीक कहा है। वी आर सिम्पेथेटिक टू योर लाइफ ! इस की बात मान लो।

दूसरा —हम तुम्हें गंवाना नहीं चाहते !

तीसरा —वी' नीड योर एसोसिएशन !

पहला —[आक्षेपक] कैसी एसोसिएशन ? कैसा पाना और कैसा गंवाना ? न एक दूसरे से सहानुभूति, न किसी से हाथ बंटाई ! न किसी का दुख न किसी का दर्द ! क्या इन्हीं बातों के लिये मानवता को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाता है ? अपनी अपनी डफली अपना अपना राग ही मनुष्यता का केन्द्रीय भाव है क्या ? मूल मंत्र है क्या ?

तीसरा —[रौब से] शायद तुम नहीं मानोगे ?

पहला —[किताबी से] तुम्हारा क्या विचार है भाई किताबी ? [समाचार पत्र-पाठक से] क्या मैं ठीक नहीं कह रहा रे अखबारी ?

किताबी —तुम्हारी बातें केवल उपन्यासों और कहानियों को रोचक एवम् दर्दीला बनाने के लिये रह गई हैं...

पत्र-पाठक— और इनका जीवन की वास्तनिकता से कोई सम्पर्क नहीं रह गया है। ये केवल भाषणों को प्रभावशाली बनाने के मसाले हैं। यही तुम भी कर रहे हो।

पहला —जीवन की वास्तविकता से इनका सम्पर्क नहीं रहा—या रहने नहीं दिया गया।......यदि ऐसा हुआ है तो क्यों ? क्या इसका कारण...... ? जब जान चुके हैं कि मिट्टी खाने से पीलिया हुआ है तो मिट्टी खाना क्यों नहीं छोड़ देते ?

दूसरा —[भुनभुनाता] साला गाली बक रहा है। मिट्टी खिला रहा है।

पहला —हम क्या बच्चे हैं जो मिट्टी छुड़ाने के लिये कोई आएगा और हमारा हाथ थाम लेगा ?........मानवता के रक्षक हमीं हो सकते हैं कोई और नहीं।

दूसरा —[रोष] पूरी तरह पागल हो चुका है यह !

सभी —पागल है यह, पागल है।

तीसरा —बहुत समझाया लेकिन मानता ही नहीं।

कुछ —निकाल दो। इसे भी निकाल दो।

चौथा —अभी ! इसी समय निकाल दो। शंट हिम आऊट एटवंस ! ही इज मैड ! [सभी भुनभुनाने लगते हैं]।

पहला —[चिंतनशील दीर्घ श्वास] पगला ठीक ही कहता था......

पगला —[ईको में] यहां से जाने से पूर्व एक बात मन में रख लो—सत्य सदा सत्य ही रहता है। सत्य का खण्डन करने के यत्न भले ही होते रहें। सत्य ही आस्तिक का धर्म है।

पहला —[स्वगत] हां ! जिन सत्यों के कारण किसी को यातनाएं दी जाती हैं, किसी को फांसी, किसी को विष दिया जाता है, किसी को गोली मारी जाती है—बाद में उन्हीं सत्यों को गले लगा लिया जाता है और उन महापुरुषों की समाधियां और मठ बनाए जाते हैं। धर्म ज्ञान की पुस्तकों में उनके नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते हैं। [करुण। सभी से] समझ नहीं पा रहा कि आपके भाग्य में क्या लिखा है ? लेकिन एक बात क्यों भूलते हैं आप—अपनी वर्तमान स्थिति में जो सुख आप को मिल रहा है वह अल्पकालिक है ? तुम सब......

एक ओर खड़े किताबी और समाचार पत्र-पाठक हाथों से संकेत करते हुए कुछ विचार विमर्श कर रहे हैं।

दूसरा —[खीझ] यह हमारा अपमान कर रहा है।

चौथा —गालियां बक रहा है। एब्यूजिंग अस।

तीसरा —[पहले से] सच ही तुम पागल हो चुके हो।

दूसरा —जाओ, अभी चले जाओ यहां से।

सभी —[ऊंचे स्वर में] निकल जाओ यहां से।

चौथा —[गरज कर] पागल कहीं का।

किताबी —ठहरो, यह इस प्रकार नहीं जाएगा। [आगे आता है]

दूसरा —तो फिर कैसे जाएगा ?

पत्र-पाठक—[आगे आकर] पहले इस से एक ब्यान लिखवा लो।

चौथा —ब्यान ? यू मीन एफिडेविट ?

किताबी —कैसा ब्यान ?

पत्र-पाठक—ब्यान यही कि मैं अपनी पूरी सुध-बुध में हूं और सब कुछ अच्छी तरह से सोच समझ सकता हूं। इस क्लब को मैं स्वयम् अपनी इच्छा से त्याग रहा हूं।

सभी भुनभुनाते हैं—"ठीक है, ठीक है....।" दूसरा सदस्य एक कागज़ और कलम कहीं से लाकर पहले सदस्य के हवाले करता है।

किताबी —अब लिख दो !

पहला —[करुण] लिखता हूं। [लिखने के लिये कलम कागज़ पर रखता है]

किताबी —ठहरो !......यों नहीं लिखा जाएगा [पत्र-पाठक से] अखबारी जो बोलेगा वही लिखना होगा।

पहला —[दुख द्रवित] अखबारी लिखाएगा ? [अखबारी से] तुम लिखवाओगे रे अखबारी।......लिखाओ ! [भीगी आंखों से सब की ओर देखता है]

पत्र-पाठक—लिखो...मैं अपनी पूरी सुध-बुध में हूं। और......

[पहला लिखता है]

पत्र-पाठक—और सब कुछ अच्छी तरह से सोच समझ सकता हूं। इस क्लब को मैं स्वयम् अपनी इच्छा से......

[पहले का लिखते-लिखते हाथ काम्पना शुरू होता है]

पत्र-पाठक—अपनी इच्छा से त्याग कर-छोड़ कर......

[पहले की हाथ के साथ कलाई भी काम्पना शुरु होती है]

पत्र-पाठक—छोड़ कर जा रहा हूं। यह मेरा......

[पहले की टांगें भी काम्पने लगती हैं]

पत्र-पाठक—यह मेरा पूर्णतया व्यक्तिगत निर्णय है।

[पहला बड़ी कठिनाई से लिखता है]

पत्र-पाठक—[मैत्रीपूर्ण स्वर] बस अब हस्ताक्षर कर दो।

पहला —हस्ताक्षर ?

पत्र-पाठक—हां हस्ताक्षर !

पहला —[रुंधा शुष्क स्वर] एक गिलास पानी ! प्यास !

[एक व्यक्ति तुरन्त पानी का गिलास लेकर आता है]

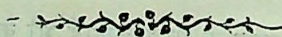
किताबी —[उसके हाथ से गिलास लेकर पहले सदस्य को देता है] यह लो, पानी पियो ! [पानी पिये जाते समय] तुम भी क्या याद करोगे कि तुम्हारा मित्र कोई नहीं था । [पानी पिये जाने के बाद] अब जल्दी से हस्ताक्षर कर दो ।

[पहला कम्पकपी में हस्ताक्षर करने के बाद सम्भलने की चेष्टा करता है]

पत्र-पाठक —अब तुम खुशी खुशी जा सकते हो !

पहला —[क्षण भर सब की ओर करुण मुद्रा में देखता है] खुशी खुशी.. हां, खुशी खुशी.. ! [द्वार की ओर बढ़ता है । मुड़ कर अवाक-सा देखता है] मैं पागल हो चुका हूं !...मैं पागल हूं । [रुआंसी हंसी के साथ] सुनो, सब सुनो, मैं पागल हूं । [ताना देता है] कल वह पागल था । उसे निकाल दिया । ......आज मैं पागल हूं । मुझ से हस्ताक्षर ले लिये । मुझे निकाल रहे हो ।......लेकिन मेरे बाद भी किसी का नम्बर आएगा । [जाते जाते] शेष लोगों को सोचना चाहिये...

[दुखद संगीत के साथ प्रस्थान—यवनिका]




JAMMU
AND
KASHMIR
ACADEMY OF ART, CULTURE & LANGUAGES